डा० दुखन राम

प्रियवर

डाक्टर दुखनराम जी को

सस्नेह

जो हजारों हजार को दिये जा रहे हैं,

नित नई दृष्टि, एक नई रोशनी—

कुछ अपनी चिकित्सा की अनूठी कला से ही नहीं;

अपनी धर्मनिष्ठा, अपनी मानवता,

अपनी सेवा से भी

निरन्तर ।

पात्र-परिचय

प्रेमनाथ जी	—एक प्रमुख आर्यसमाजी।
सुरेश	—प्रेमनाथ जी का पुत्र।
मुकुल	—प्रेमनाथ जी का सहयोगी।
युसुफ	—एक ग़ैरजिम्मेवार मनचला युवक।
रनवीर	—सुरेश का पुत्र (?)
गुलाब	—युसुफ का बेटा (?)
जफ़र (जौजेफ़)	—युसुफ का दोस्त।
दीनू	—रानी का नौकर।
सुलतान	—रनवीर का दोस्त।
किशोर, सतीश, भुवन	प्रेमनाथजी के परिचित, नये विचार के युवक।
बेला	—एक सताई हुई युवती।
रानी	—एक नई रोशनी की युवती।
मीरा	—सुरेश की पुत्री।

प्रथम अङ्क

प्रथम दृश्य

रानी के मकान से सटा हुआ छोटा-सा एक पार्क। रानी एक बंच पर चुप बैठी है—अपने ही में खोयी, डूबी सी। हाथ में एक किताब है जिसे पल भर पढ़ती है, फिर पढ़ नहीं पाती—उलट कर रख देती है। कान और आँखें उठाकर लगती है जैसे किसी की आहट लेने। फिर चाहती है किताब पढ़ना, झुकती है और लगती है पन्ने खोल कर पढ़ने।

युसुफ आहिस्ते-आहिस्ते पीछे से आता है और चुप खड़ा रहता है—एक टक रानी को देखता है। रानी पुस्तक रख देती है, सर ऊपर उठाती है—चेहरे पर चिन्ता है। आँखों में आँसू। तभी युसुफ पीछे ही से एक अजब अन्दाज़ से गुन-गुना उठता है।

युसुफ—'याद में तेरी जहाँ को भूलता जाता हूँ मैं,
भूलने वाले! कभी तुमको भी याद आता हूँ मैं?'

(रानी चौंककर उठती है, लगती है उसे देखने, अँचल से आँखों के आँसू पोंछ लेती है।)

रानी—अरे तुम! यहाँ कैसे?

युसुफ—मैं भी पूछता हूँ, तुम यहाँ कैसे?

रानी—लो, सुनो, यहाँ बैठने में रखा ही क्या है?

युसुफ—मगर यह क्या—यह क्या देख रहा हूँ मैं?
जिन आँखों में मस्ती के पैमाने छलकते रहे उनमें आँसू के तरारे कैसे!

रानी—भला कैसे क्या? जैसे वह, वैसे यह—क्या हँसना, क्या रोना!

युसुफ—अच्छा, यह बात है।

रानी—और क्या—आखिर आँख ही तो है कैसे न उमड़े ! और जानते हो न, आँसू के वरारे से घबराना नहीं, घबराना चाहिए आँखों के सूखे से। कहीं आँसू का झरना ही सूख गया तो लो, यह ज़िन्दगी ही बालू की रेत रह गयी।

युसुफ—क्या खूब ! तो मोती बरसाये जाओ। मगर मैं पूछता हूँ—यह सिन, यह हुस्न और चेहरे पर यह शिकन ?

रानी—तो हुआ क्या, जी ही तो है—उठे या बैठे। हाँ, आँसू उड़ेल जी का भार हल्का कर लेना·····

युसुफ—भई वाह ! क्या कहने तुम्हारे आँसू के निखार के !

(युसुफ आकर उसी बेंच के एक सिरे पर बैठ जाता है। रानी ज़रा अलग सरक जाती है।)

रानी—जी, रस के फव्वारे एक ओर. आँसू के तरारे एक ओर—समझे।

(युसुफ सर हिलाता है)

युसुफ—चाहे कुछ कहो, मगर यह जिन्दगी तो आँसू के वरारे के लिए नहीं बनी—रस के फव्वारे में ही उसकी अपनी ज़िन्दगी ठहरी और तुम्हारे सिन का तकाज़ा भी तो दूसरा नहीं। जानती हो न, उठती जवानी अगर तूफान ही न उठा सकी तो फिर वह उठी क्या ? खाक—बैठ गयी कमर थाम जैसे।

रानी—*(सर झुका कर ज़रा सोचकर)* क्या उठे, कैसे उठे—तकदीर जो उठने दे।

(युसुफ सर हिलाता है)

युसुफ—उहूँ, तुम तो जहाँ उंगली रख दोगी, वहीं तक़दीर की नब्ज़ चल उठेगी।

रानी—यह तो जैसे कि तक़दीर भी किसी के हाथ ठहरी।

युसुफ—मैं तो दावे के साथ कहता हूँ, तुम्हारे एक-एक क़दम के पीछे तक़दीर सर के बल चलेगी। मगर हाँ, ज़रा आँखें खोलकर कदम रखना है—समझी !

रानी—*(मुस्कराती है)* फिर वही बात ? जैसे कि आँख मूँद कर कदम रखता है कोई।

युसुफ—जी, जवानी होती है जरी अन्धी। उसकी आँखों में जादू चाहे जो हो, मगर अपनी मंजिल की वैसी पहचान नहीं। जभी तो घर के बड़े-बूढ़े चाहिए जो उसे सही रास्ते दिखा पायें।

रानी—कहा न, तक़दीर ही नहीं तो कुछ भी नहीं। माँ की तो याद तक नहीं, एक डैडी थे, वह भी जानते ही हो तुम, कोई दो साल होने को आये विलायत ही में उठ गये। अब अपना कोई भी वैसा न रहा।

(वह फिर सिर झुका लेती है)

युसुफ—मगर, तुम्हें याद होगा मेरे वालिद को तुम चचा ही कहती रही। ऐसा सरोकार ही था दोनों घरों में—एक जान दो कालिब! सुबह-शाम साथ उठना-बैठना, खाना-पीना, क्या-क्या नहीं! तो समझी रानी, मेरे रहते तुम अकेली रहो—मुझसे तो यह देखा नहीं जाता।

रानी—बनो मत, आज कुछ नया देख रहे हो क्या?

युसुफ—तुम्हारी आँखों में आँसू तो आज मैंने नया ही देखा। आँखों में बिजली देखी थी, नमी नहीं। और देखो भई,

देखो न आँख भरके किसी की तरफ कभी
तुमको ख़बर नहीं जो तुम्हारी नज़र में है।'

रानी—जाने दो, छोड़ो भी इन बातों को। आखिर, यह जिन्दगी ही आँसू और मुस्कान की आँख-मिचौनी ठहरी—कभी यह, कभी वह।

युसुफ—*(दर्द भरी आवाज़ में)* जो हो, तुम मुझपर खुलो या न खुलो—खुशी तुम्हारी, मगर तुम्हारे आँसू को हम अपनी आँखों में जगह न दे पाये तो फिर हम अपनी नजर से आप गिर गये—हम जो ठहरे तुम्हारे ऐसे अपने...

रानी—तुम्हारे किये क्या होने को है भला!

युसुफ—क्या नहीं—कहो। जान तक हाजिर है।

रानी—तुम्हारी ऐसी हमदर्दी—आज यह क्या देख रही हूँ मैं!

युसुफ—*(एक अजब आवेश में सीने पर हाथ रख कर)* अजी, यह हमदर्दी ही नहीं—दिल की लगी भी है। अफ़सोस! तुमने इसे कभी पहचाना नहीं।

रानी—आज यह सब क्या सुन रही हूँ मैं ?

युसुफ—सुनती तो जाने कब से आयी हो, मगर सुनकर भी अनसुनी कर दी तो......

रानी—कभी जो तुम्हारी जबान पर ऐसी बात......

युसुफ—जबान पर ! जबान का वहाँ गुजर कहाँ ? दिल की यह लगी आँखों तक आयी तो आयी—जबान पर तो कभी आने से रही वह। सुना है न—

'आँखों आँखों मे ले गये दिल को,
कानों-कानों भी खबर न हुई।'

रानी—(*हँसकर*) तो क्या प्यार के साथ कोई इजहार नहीं ?

युसुफ—भला प्यार और इजहार। फिर वह प्यार-प्यार रहा ?

रानी—सो क्या ?

युसुफ—यही कि प्यार अगर इश्तहार पर आ गया तो वह तमाशा हो गया, दिल का तकाजा नहीं। निगाह तक आया तो खैर, कोई बात नहीं, कहीं दिल की ऊँचाई से उतर कर जबान पर बिखर गया, तो लीजिए वह अपना पानी आप खो बैठा—समझी।

रानी—(*मुस्करा कर*) जी, एक अभिनय हो गया वह—हृदय का परिचय नहीं। मगर, तुम्हारे प्यार से हमें इन्कार तो नहीं। तुम्हारे वालिद को मैं एक चचा ही समझती रही।

युसुफ—जान कर भी अनजान बन रही हो क्यों ? यह प्यार कुछ और है—क्या कहूँ, कैसे कहूँ, जबान तो उसे अदा करने से रही।

रानी—तो शुक्र है, तुम्हारी जबान अपनी शराफत पर बनी है। तुम्हारे लहू की पुकार उसने अनसुनी कर दी···अपना पानी उसने रख लिया। भला सोचो तो, तुम्हारे घर से कैसा, क्या सरोकार रह आया है बराबर और यह आज क्या सूझी है तुम्हें ?

युसुफ—मैंने अपनी मुहब्बत जताई तो बुराई क्या की ! आखिर,

'हम गरीबों को भी कुछ हुस्न की खैरात मिले,
जिसको देता है खुदा वह राहे-खुदा देता है।'

रानी—यही मुहब्बत है तुम्हारी, शर्म नहीं आती ! तुम्हारी

होकर कहाँ की रह पाऊँगी मैं—बोलो ? तुम्हारे साथ निकाह ठहरा, मेरे साथ विवाह ! फिर, हम-तुम तो एक धागे में पिरोये नहीं जाते।

युसुफ—माफ करना, हमारे सामने तुम हो बस—तुम्हारी जात या धर्म नहीं। और विलायत के हवा-पानी में पल कर भी तुम्हारी तंगनज़री नहीं गई—मुझे रह-रह कर तरस आती है तुम पर।

रानी—अजो, यह हिन्दुस्तान है, लंडन नहीं। और मैं अपने कुल को काट कर कुएँ में डाल दूँ—यह तो जान रहते······

युसुफ—मेरे सामने भी यह सवाल है बराबर, मगर, दिल के आगे न कुल की चली है न किसी शास्त्र या शरीयत की। मेरी निगाह में हर आदमी बराबर है—वह कौन है, क्या है, कहाँ है, कोई बात नहीं। मुझे अफसोस है कि ज़माने की नब्ज़ पर तुम्हारी उँगली नहीं। उसी दक़ियानूसी रीति-रिवाज़ों की चिलम भरे जा रही आँखें मूँद····आखिर तुम्हें चाहिए क्या—मेरी जान हाजिर है, मेरा दिल·····

रानी—मैं तुम्हारी तरह आज़ाद रहती तो तुम्हारे दिल की तलाशी लेती—जो कुछ तुम कह गये वह ज़बानी भफा-रेबाज़ी ही ठहरी या दिली·······

यसुफ—*(चौंक कर)* तो क्या तुम आज़ाद नहीं ?

रानी—*(सर झुका कर)* जी नहीं—क्या दिल क्या ज़बान और क्या यह····जो तुम्हारे सामने है *(वह अपना शरीर दिखाती है)* कोई भी अपना नहीं।

युसुफ—*(जरा हँस कर)* ओहो। 'बड़ा तीर मारा, जवानी लुटा दी'····तो तुमने यह अकेले अपने ही ऊपर विलायत की सारी कला खर्च कर दी—और यह हिन्दुस्तान ठहरा, लंडन नहीं। ऐसी उजलत भी क्या थी आखिर ? और वह कौन है ऐसा अपना—सुनूँ भी। उसे तो तुम्हारे सर पर पहले सिन्दूर रखना था। ऐसे तो वह एक लुटेरा ही ठहरा लुटेरा। है न ? और मुझसे कहा तो कहा, किसी और के सामने कभी भूल कर भी······

रानी—(सर झुका कर) क्या बताऊँ, तुम ऐसे सिर हो गये कि मैं अपने में न रही—उबल पड़ी। मगर हाँ भगवान ने चाहा तो एकाध महीने के अन्दर ही यह रस्म की तामीली भी······

युसुफ—मगर कौन है वह ऐसा खुशक़िस्मत ?

रानी—कोई ग़ैर नहीं—तुम्हारा भी एक जानी-पहचानी ठहरा। एकाध दिन में तुम आप ही जान लोगे।

(रानी शर्म से सिर झुका लेती है)

युसुफ—तो फिर तुम्हारे चेहरे पर हँसी चाहिए, आँखों में यह नमी कैसी ?

रानी—क्या कहूँ, कई दिन से उसी के इन्तज़ार में पलकें बिछाये बैठी हूँ। उसे कल सुबह ही यहाँ पहुँच आना था। जाने क्या·······

युसुफ—और तुम हो कि बाट जोहती बैठी हो कल से—किसी करवट कल नहीं। मैं पूछता हूँ, तुम तो अपना सब कुछ उसे दे चुकी—सीने पर सवार लूट ली उसने, या तुम ख़ुद ही लुटाती आई आँखें मूँद। मगर, उसके हाथों भी कुछ पाया है एवज़ में ? दो दाने सिन्दूर भी उसके हाथों अपने सर पर पाती, वह भी अभी वादा ही वादा है—है न ? वफा भी है उसमें यह पहचान तो तुम्हारी आँखों में आते-आते आयेगी।

रानी—नहीं-नहीं, यह इतमिनान न होता तो मुझे कुत्ते ने काट खाया था कि यों अपने को·······

(दीनू के हाथ में तार का लिफाफा लिये प्रवेश)

रानी—क्या है दीनू, हाथ में क्या है ?

दीनू—तार है। अभी दे गया पिउन।

(रानी उठकर तार थाम लेती है, खोलकर पढ़ती है)

रानी—लो, कहा न ! आ ही चले वह, *(दीनू की ओर मुड़ कर)* तो भई, आज उनके पसन्द की चीज़—समझे न······ दही-बड़े और समोसे······हाँ-हाँ, चाय भी तैयार रखना ·······सुनो तो, यहीं लेते आना, हर्ज क्या है ?

दीनू—मगर, अभी मिरज़ा साहब के घर से सीक़-कबाब दे गया है कोई।

रानी—अच्छा! आज ज़माने पर कैसे याद आई मैं ···· मगर तुम्हें तो जता देना था कि मैं अब·······

दीनू—(*हँसकर*) भगविन हो गई!

रानी—नहीं-नहीं, यह कहने की नहीं······तुम छोड़ो भी······ अपने एक ख़त के साथ वापस कर दूँगी।

युसुफ—(*सामने आकर*) मैं तो हाथ बाँधे खड़ा ही हूँ—साथ लिये जाऊँगा, कोई मुज़ायका नहीं।

रानी—अरे! अभी तुम गये नहीं?

युसुफ—जी, जा ही रहा हूँ—मेरा तो कोई काम नहीं अब। मैं तो तुम्हारी आँखों के आँसू पर खिंच आया था, नहीं तो·······

रानी—(*आँखें उठाकर*) ऐसा क्यों कह रहे हो, मैंने तो कुछ कहा नहीं।

युसुफ—जी नहीं, बात यह है कि आपका चेहरा खिल उठा—ख़ुशी की लहरें हैं। मैंने देख लिया—लाखों पाया। अब मेरी वैसी जरूरत न रही।

रानी—भला यह भी कोई बात है?

युसुफ—बन्दा परवर, यों आने के लिए तो आपके दर पर दुनियाँ आती है। हँसी-ख़ुशी के साथी तो बे-बुलाये भी आसमान से बरस आते हैं बराबर, मगर कहीं, ख़ुदा न करे, आसमान सर पर फटा और उमड़ आये तुम्हारी आँखों में आँसू तो फिर आये तो कोई उन्हें अपनी आँखों में पिरोने·········जाने दीजिये, आप फूलें-फलें।

रानी—अच्छा भई, फिर कभी······(*वह उठ खड़ी होती है*)

युसुफ—जी, जैसी मर्ज़ी···ख़ुदा हाफ़िज़। (*युसुफ दूसरी ओर मुड़ता है। एक अजब आवेश में लगता है गुनगुनाने भी*)

"वो फिर वादा मिलने को करते हैं यानी, (*अभी कुछ दिनों और जीना पड़ेगा।")*

रानी—(*नेपथ्य की ओर देख कर*) लो, वह आ ही गये। (*वह उठ कर उसी ओर चली जाती है, युसुफ दूसरी ओर से लौट आता है। देख रहा है कि कौन आ रहा है।*)

युसुफ—लो, मेरा सोचा सही निकला—वही है, वही सुरेश, जो हाथ धो मेरे पीछे पड़ा है। अच्छा लाला, दम धरो, तुम भी क्या याद करोगे कि पड़ा था किसी रक़ीब से पाला—छठी का दूध याद न करा दिया तो हाँ······

(*वह मुड़ कर एक घनी झाड़ी की आड़ में खड़ा हो जाता है। सुरेश और रानी का प्रवेश*)

रानी—यही आ रहे हो दो दिन में—यहाँ जान जाने पर आ गई।

सुरेश—हमारी उलझन जान लोगी तो तुम्हारा उफान कुछ और होगा·······हाँ

(*दोनों आस-पास एक ही बेंच पर बैठ जाते हैं।*)

रानी—सो क्या ?

सुरेश—यही कि भले आदमी कहाँ की ऐसी पड़ी थी कि यों सर के बल दौड़े चले आये······

रानी—जो कहो, तुम्हें क्या पता कि इन्तजार क्या है। कहाँ रात पल में उड़ जाती रही, कहाँ यह हाल है कि आँखों में ही रात कटती है—ये रूठी हुई नींदें तो मेरी सुनने से रहीं।

सुरेश—फिर भी तुम मुझसे बीस ही थी, उन्नीस नहीं। जानती हो न, इन्तजार ही में तो प्यार का निखार होता है। विरह की रात में ही प्रेम के दीये जलते हैं। कहाँ मुझे तो किसी करवट कल न था। कहाँ-कहाँ की न खाक छाननी पड़ी—क्या-क्या नहीं मोर्चे लेने पड़े।

रानी—आखिर क्या ऐसी उलझन थी ?···तुम तो चलते वक्त कह गये कि पिता जी ने तार देकर बुला भेजा है।

सुरेश—तो झूठ क्या कहा ! जानती हो न, पिताजी ठहरे यहाँ के आर्य समाज के सब कुछ। वह कब तुम्हारे सनातनी पंडितों और पुरोहितों की तरह जिस डाल पर बैठते हैं, उसी की जड़ में कुदाल मारते हैं। वे तो उस कटी

डाल को भी फिर अपने आँगन में रोप, चाहते हैं सींच-सींचकर हरी कर देना।

रानी—यह तो बड़ी बात है उनकी।

सुरेश—देखो न, अगले जमाने में किसी हिन्दू ने भूल कर भी दो घूंट छुआ पानी पी लिया तो वह उसी चुल्लू भर पानी में डूब मरा—कोई उबार नहीं। आज भी एक हिन्दू-लड़की को किसी ग़ैर जात ने मेले-ठेले में खड़े-खड़े लूट लिया तो लो, वह बेचारी हिन्दू समाज से खारिज। उसकी न कहीं पूछ है न पैठ। ऐसी सर-बीतियों की मारी तो अपनी खोई हुई जिन्दगी की पौर पर कभी लौट नहीं पाती।

रानी—तो कोई पर्दे की बात है क्या?

सुरेश—दो माह होने को आये, पड़ोस के गाँव के एक भले घर की जानी-पहचानी लड़की गंगा-मेले में खो गई। दो-चार गुण्डों ने कम्पा मारा—उसे ले उड़े, और जहाँ तक पता चला है वह इसी शहर में एक मुसलमान के हाथों खपा दी गई है। मगर हाँ, है वह एक घाघ। उसे अपने यहाँ शहर में न रख कर गाँव के एक अपने कारिन्दे के घर रख छोड़ा है। उसी की खोज में लहू-पसीना एक कर रहे हैं हम।

रानी—उस लड़की के माँ-बाप को कोई फ़िकर नहीं है क्या?

सुरेश—अजा, वे तो चाह रहे हैं कि कोई नाम न ले उसका—क्या जाने नहाते वक्त गंगा में डूब गई। वह वापस भी आती है तो घर की पौर पर गुजर नहीं—आखिर हिन्दू-जाति ऐसी गई-बीती—

रानी—तो बिचारी हिन्दू के घर क्या आई उसकी किस्मत ही फूट गई। गाँव की लड़की—कोई शिक्षा, कोई खुली हवा नसीब नहीं। पर्दे की रूढ़ियों में पलती आई—अपने पैरों पर खड़े होने की सत्ता नहीं। गुंडों के हाथों शिकार न होगी तो क्या...

सुरेश—यही तो बात है। सनातन धर्म और सनातनी यह जड़ता तो जाते-जाते जायगी न।

रानी—तो क्या तुम्हारे पिता उसका उबार कर पायेंगे—कोई टोह लगी है क्या ?

सुरेश—हाँ, पता चल रहा है एकाध दिन में तुम खुद ही सुन लोगी।

रानी—मगर, मैं पूछती हूँ—कि वह वापस आती भी है तो तवे से छूट कर आँच में नहीं आती ? कौन उसे स्वीकार कर पायेगा अपने यहाँ ? आखिर बाजार की ही खाक छाननी पड़ी तो फायदा ?

सुरेश—नहीं-नहीं, पिताजी कुछ ऐसे-वैसे नहीं तुले हैं, उसकी शादी करा कर ही छोड़ेंगे—आखिर उसका क़सूर ? उनके साथ कुछ ऐसे नौजवान सेवक भी हैं जो उस भार को उठा लेंगे—आर्य-समाज ने जो उनकी आँखें खोल रखी हैं।

रानी—खैर देखो, मैं तो पाती हूँ कि आज के हवा-पानी में आदमी कहता है कुछ और रहता है कुछ।

सुरेश—नहीं, सभी ऐसे नहीं। और वह देखने-सुनने में भी अपनी एक जगह रखती है—अच्छे-अच्छे मरेंगे उस पर, देख लेना।

रानी—मैं क्या देखूँगी—देख रही हूँ अपनी हस्ती—क्या थी और क्या हो रही हूँ···जाने दो।

सुरेश—*(चौंक कर)* यह क्या कह रही हो तुम ?

रानी—कुछ तो नहीं।

(वह मुँह लटका लेती है—आँखों में आँसू भर आते हैं। वह झुक जाती है)

सुरेश—मेरी तरफ देखो, *(वह रानी का हाथ अपने हाथ में ले लेता है)* कुछ सोच रही हो—कहो न।

रानी—नहीं तो *(वह और झुक जाती है।)*

सुरेश—मगर, तुम्हारे चेहरे पर तो क्या कुछ जैसे साफ लिखी है।

रानी—तो फिर पढ़ भी लो—पूछते क्या हो।

सुरेश—चेहरे पर नज़र तो ठहरती नहीं—कैसे क्या पढ़ूँ ?

रानी—कैसे ठहरे—तुम्हारी नज़र में ठहराव भी हो······

सुरेश—यह क्या कह रही हो तुम ?

रानी—झूठ क्या, हमारी नज़र में तो तुम्हारे सिवा कभी कोई ठहरा ही नहीं, और तुम हो कि……

सुरेश—जी नहीं, हमारी आँखों में वो बस दो ही आँखें आईं और आईं नहीं कि कलेजे तक उतर गईं—किसी और की तो गुंजाइश ही नहीं यहाँ।

रानी—चाहे कुछ कहो—गई तो मैं। तुम क्या आये मेरी ज़िन्दगी में तूफान आया और लो अपनी हस्ती की तमाम कीलें उखड़ पड़ीं-क्या सोचा, क्या चाहा और आज क्या से क्या होने पर आई हूँ।

सुरेश—और तुम न आतीं तो मेरी सूखी ज़िन्दगी हरी हो पाती? किताबों का कीड़ा ही रह जाता बराबर—आज तो मैं एक शमा का परवाना हूँ—परवाना और इसी जलन में दिल की तड़प है—तरावट भी।

रानी—मगर, तुम्हें पता है, वह शमा तो टिमटिमा कर बुझने पर आयी है। जरा सोचो तो, आज जाने कितने महीने होने को आये, तुम से सौ बार कहा होगा कि विवाह कर लो, तब प्यार करो—मगर तुम क्यों सुनो……

सुरेश—कैसे सुनें—ज़िन्दगी का मज़ा ही किरकिरा कर धर दें। प्यार पहले, विवाह पीछे—बहुत पीछे।

रानी—हमारे यहाँ वो प्यार जब आया विवाह का दामन थाम कर आया—यों नहीं। एकाध इस नियम का व्यतिक्रम चाहे जो हो।

सुरेश—भई, जहाँ नियम है, वहाँ प्रेम कहाँ? सच मानो विवाह के बाद तो प्यार-प्यार नहीं रहता एक निबाह है बस। जिस प्यार पर धर्म और समाज की मुहर है—सुहाग का सिन्दूर, वह तो एक बँधी-सधी लीक का अनुशीलन ठहरा। उसमें कहाँ वह तड़प है जो ज़िन्दगी को झिंझोर कर धर दे। और न वह तिलस्म है कि दुनियाँ कुछ की कुछ हो जाय—नई ज़मीन, नया आसमान—बारह मासी बहार, हवा में मस्ती, अन्धेरे में भी चाँदनी—समझी। आज तो जब तुम मुस्कराती हो तो विश्व का ज़र्रा-ज़र्रा मुस्करा उठता है, और कहीं तुम्हारे

चेहरे पर बादल छाये तो लो, दुनियाँ के कोने-कोने पर अन्धेरा........

रानी—तुम्हारी भी क्या बातें हैं भला—बात बनाना कोई तुमसे सीखे!

सुरेश—मैं पूछता हूँ, आज हमारा-तुम्हारा विवाह हुआ रहता तो यह दो दिन का इन्तज़ार पहाड़ हो पाता—तुम पलकें बिछाये बाट जोहती और रात आँखों में कटती? लो, मैं ही ज़िंदगी की तमाम जिम्मेवारियों को ताक पर रख तुम्हारे होठों पर मुस्कान ढूँढ़ने के लिए जान की बाज़ी लगा पाता? सुना है न—

"वह जितना हमसे छिपते जा रहे हैं,
नज़र का शौक बढ़ता जा रहा है।"

क्यों? चूँकि वह अभी अपनी मुट्ठी में नहीं। आज तो किसी हीले तुम्हें भर अंकवार पाने के लिए हथेली पर जान रख देना भी कोई बात नहीं, मगर कल—शादी बाद? सीने के रोयें भी वैसे सिहर पायेंगे? टिक पायेगी यह तलाश और पा जाने पर उल्लास! बच जायगी यह नहीं पाने की आशंका और पाते रहने की उत्कण्ठा?....बोलो।

रानी—बस रखो भी—यह प्रेम की पेंगे नहीं, वासना की छलांगे ठहरीं—छलांगें। क्या दिन आ गये आज! अब औरत की सारी जमा पूँजी उसकी जवानी—उसकी आकृति रह गई। जो कीमत है वह उसके डील-डौल, उसकी सूरत की—कुछ उसकी सेवा और सत की नहीं। face and figure the only fortune. तुम्हें पता है, तुम्हारे इस प्यार ने तो मुझे कहीं का न रखा आज—ले डूबा बैठे-बिठाये।

सुरेश—*(चौंक कर)* यह क्या कह रही हो तुम?

रानी—*(सर झुकाकर)* यही कि मेरे पैर भारी होने को आये और लो, अभी हाथ पीले भी न हुए—मरी जाती हूँ शर्म से, डर से। कहीं कोई टोक न बैठे—आँखें चुराये रखनी हैं आठो पहर...*(वह सर झुका लेती है। दो पल*

बाद फिर रुक-रुक कर बोलती है) लो, यह भी होना था—वही हुआ। आगे भी जो होना है, हो—तुम्हें क्या? तुम्हारा जाता ही क्या है?

सुरेश—तुम भी बड़ी वह हो—जाने क्या-क्या न सोचा करती हो बे-सिर-पैर की। ऐसी भी बात क्या होगी भला? तुम्हारा डर बोल रहा है—डर।

रानी—तुम नहीं मानते तो न मानो। कैसे मानो, मुजरिम जो तुम ठहरे! भूल गये, कैसे-कैसे सिर हो जाते—एक भी सुनी मेरी? करती क्या—तुम्हें दिल जो दे चुकी थी।

सुरेश—तो तुम जान रही हो या यों ही एक धुंध है तुम्हारे दिमाग़ पर?

रानी—अजी, मेरा तो रोआँ-रोआँ जान रहा है दो-चार दिन से—यक़ीन मानो। तुम्हें क्या कहूँ—कैसे कहूँ?

सुरेश—माफ करो रानी, बड़ी भूल हुई मुझसे। अपनी आँखों में आप गिर गया मैं। क्या बताऊँ, मेरी नज़र पर तो तुम थी—यह दर्दनाक अंजाम नहीं।

रानी—नहीं-नहीं, देखा तो मैंने तुमको, तुम्हीं को—अपने को भी नहीं। अपने को कहीं देखे रहती तो आज ये दिन में तारे देखती?

सुरेश—*(सर झुकाकर)* मैं भी देखता रहा कि यह क्या कर रहा हूँ—पर लाचार किये गया—नशे में चूर जैसे। अपने अन्दर भी इसकी, उसकी—किसकी नहीं जली कटी सुना की, पर लहू का उबाल ही ऐसा है कि आँखें खुल-खुल कर भी झिपती जाती हैं—जानकार भी अनजान-सा खिंचा आता है इस मोह के भँवर में। सच है—'इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।'

रानी—तो फिर अब क्या मर्ज़ी ठहरी--तुम्हारी आँख का पानी भी ढल गया क्या?

सुरेश—नहीं-नहीं, दस दिन के अन्दर ही विवाह का रस्म अदा हो जायगा—कोई बात नहीं। और अपनी सचाई को

थाती यह अँगूठी तुम्हारी उँगली में दिये देता हूँ—रख लो।

(वह अपनी कानी उँगली से अंगूठी उतार कर रानी की उँगली में पहना देता है।)

रानी—क्या सच ?

सुरेश—बेशक ! अभी लौट रहा हूँ मैं—लिये आता हूँ पिताजी को दो दिन में—हाथ कंगन तो आरसी क्या ? शुभस्य शीघ्रम्।

रानी—कहीं उन्हें फुर्सत न रही तो ?

सुरेश—कोई बात नहीं—उनका आशीर्वाद काफी नहीं ?

रानी—सो तो है, मगर जानें क्यों एक धड़कन-सी उठ आती है कि कहीं उनकी नजर में कोई और हुई और तुम्हें···

सुरेश—दुत् पगली, जब पूरब का सूरज पच्छिम उगे तब न। यों वो जीते जी······

(वह उठ खड़ा होता है।)

रानी—तो जा ही रहे हो क्या—अभी ?

सुरेश—मुझे तो ऐसे भी जाना ही रहा। भूल गई, तुमसे क्या कहा—उस खोई हुई अबला का उद्धार !

रानी—भला भूलने की बात है—मैं भी तो एक अबला ही ठहरी आखिर···अरे चाय तो पीते जाओ·····

(नेपथ्य की ओर पुकारती है) दीनू ! ओ दीनू !!

सुरेश—भला कहाँ वक्त रहा ?

रानी—नहीं-नहीं, दो घूँट भी पिये जाओ।

सुरेश—अच्छा जी, तो चलो तुम्हारे ही यहाँ *(मुस्कराकर)* 'मगर शर्त है अपने हाथों पिलाना।'

(सुरेश कलाई की घड़ी देखता है। रानी को साथ लिये प्रस्थान।)

युसुफ—*(सामने की झाड़ी से निकल कर आता है)* अच्छा लाला, बड़े आये हैं चाय पीने ! जी, लहू का घूंट न पिलाया तो कहना···तुम्हीं रहे या हमी। किसी के सर कफ़न तो किसी के सर सेहरा !

प्रथम अङ्क

द्वितीय दृश्य

(सुरेश के पिता, प्रेमनाथ जी हाथों में सर थामे हुए चुप बैठे हैं—अपने आफिस में कुर्सी पर—कुछ सोच रहे हैं जैसे। मुकुल और सुरेश का प्रवेश। सुरेश अभी शहर से आया है)

मुकुल—बस, जब देखिये तो जाने क्या लिए बैठे हैं गुप-चुप। अब आप यों क्या सोच रहे हैं, भला ? ऐसे-वैसों की तो बात ही क्या, बड़े-बड़ों की ज़बान पर भी आज आपके नाम की धूम है ! भई वाह ! बेटा हो तो ऐसा हो। कुछ उठा न रखा सुरेश ने—क्या-क्या मोर्चे नहीं लिये। वह इतना ज़ोर न मारता तो बेला बिचारी जल्लाद के पँजे से छूट पाती ?

प्रेमनाथ जी—देखा न, पुलिस वाले तो मुँह चुराये चल रहे हैं जैसे।

सुरेश—जी, उनसे तो वैसा कुछ बना नहीं। और लीजिए इस गये-गुजरे प्रान्त में भी आर्य-समाज का सिक्का चल गया आज।

प्रेमनाथ जी—मगर भई, अभी तो यह पहला मोर्चा ठहरा—हमारी जीत या हार तो अब होगी—अब।

मुकुल—सो क्या ?

प्रेमनाथ जी—यही कि उस बिचारी का विवाह न करा पाया तो फिर यह जीत भी हार में गुम हो जायगी। वग़ैर उसके तो हमारे यहाँ कहीं गुज़र नहीं बस जवानों

की उमीद ठहरी—जो पढ़े-लिखे आज़ाद ख्याल के हों, माँ-बाप की त्योरी की परवा न करें।

मुकुल—जी, और क्या ! बड़े-बूढ़े तो हमारी सारी मनमानियाँ, चोरी, चमारी, जनाकारी तक भी जी-जाँत पी लें—पचा डालें. मगर, कहीं उनकी मर्ज़ी के खिलाफ किसी ऐसी लड़की को व्याह कर घर लाना चाहें तो लीजिए गर्दन में हाथ है—घर के दरवाजे तक बन्द।

सुरेश—मगर, यह भी कोई बात है ? शादी तो अपनी जिम्मेवारी ठहरी, माँ-बाप की स्वीकृति का प्रश्न तो कोई तथ्य नहीं रखता—

प्रेम०—अच्छी बात है, तो तुम इस काम में भी हाथ बटाते। बाप का नाम तो उजागर किया, भेड़िये की मांद से जान पर खेल उसे उबार लाये—पर वह ऐसी झंझोरी हुई ठहरी कि रह-रह कर लगता है कि कहीं उसे खड़े होने की भी जगह न मिली और हाथ-पैर मार आखिर बाजार की ही खाक छाननी पड़ी तो लो, बदनामी हाथ आई, बस।

सुरेश—मगर, ऐसी जल्दी भी क्या है। तब तक यहीं कहीं आपकी सरन में ठहरे··· मुझे तो लौट जाना है इसी वक्त······

प्रेमनाथ जी—यह लो ! अभी वापस जाना चाहते हो क्या ?

सुरेश—जी, हाँ—अर्ज़ करूँगा, है कुछ ऐसी बात···इम्तहान भी तो सर पर है।

प्रेमनाथ जी—भई, आज तो तुम जाने से रहे—यह बेड़ा तो पार किये जाओ, जैसे हो। तुम्हारे कितने संगी-साथी हैं यहाँ, किसी को तो तैयार कर दो कि इस बिचारी के सर पर सिन्दूर रख उठा ले। हम ठहरे अकेले जीव, आठो पहर निगरानी तो निभने से रही। घर में कोई वैसी स्त्री भी होती तो एक बात थी। इधर-उधर दौरे पर बराबर जाना ठहरा···खैर नहीं।

मुकुल—हाँ भई, कब क्या हो जाय---किसी का भरोसा नहीं यहाँ। यह जगह जो बड़ी वैसी है।

सुरेश—अच्छा जी, अभी जाकर देखता हूँ—दो-चार ऐसे मित्र तो हैं यहाँ भी जो शायद सनातन के फेर में न आयें।

प्रेम०—तो फिर शुभस्य शीघ्रम्। हमने भी खबर कर रखी है हर जगह। चन्द ऐसे जाने-माने जवानों को भी बुला भेजा है, जिनकी आँखें खुली हैं—भले और बुरे की अपनी पहचान भी है। उम्मीद तो ऐसी ही ठहरी·· अब देखो, कहाँ तक···

सुरेश—जी, अभी आया।

(सुरेश का प्रस्थान)

प्रेम०—क्यों भई, मुकुल! टाइम तो हो चला, किसी का पता नहीं।

मुकुल—आते ही होंगे। घबराने की कोई बात नहीं। अच्छा, बेला को भी यहाँ बुला लेना कैसा होगा—क्या राय?

प्रेम०—राय क्या? पते की बात है यह। भला कहीं हो सकता है कि उसे देखकर कोई अपनी आँखों पर ठिकरी रख ले? बस, उसे लेते ही आवो, ज़रा सज-धज भी रहे—है न?

मुकुल—वह ऐसे ही कुदरत के हाथों बनी-संवरी है, कोई चिराग़ लेकर भी ढूँढ़े ·तो आप के इस मोती का जोड़ा मिलना आसान नहीं।

प्रेम०—यह सबकुछ है तो क्या? किसी परिवार के सूत्र में पिरोई न गई तो फिर क़ीमत ही क्या?

मुकुल—जी, यही तो बात है। लीजिये, आ गये भुवन जी, सतीश जी, अच्छा किशोर जी भी हैं···अरे यह कौन आइये, आइये कोई बात नहीं, आपका ही तो इन्तजार रहा। तो मैं लिये आऊँ बेला को भी···हाँ रे सुन्दर *(नेपथ्य की ओर मुड़कर)* दो-तीन कुर्सियाँ और दिये जाना यहाँ। आप बैठ जाइए आराम से··· *(सब आते हैं, नमस्ते करते हैं—हाथ जोड़ते हैं—सुन्दर आकर दो कुर्सियाँ रख जाता है। मुकुल भी बाहर जाते हैं और बेला को लिये आते हैं। वह एक ओर खड़ी रहती है, सर झुकाये—सादी खादी की साड़ी, सर पर आँचल, भव्य सुन्दर मूर्त्ति—*

सब उसे देख रहे हैं—आपस में कुछ फुस-फुस बातें भी करते हैं। उसी पल सुरेश जी भी आते हैं अपने एक हमजोली के साथ—वहीं बेंच पर बैठ जाते हैं।)

मुकुल—अच्छा, तो चाय या शर्बत—जैसी खुशी।

भुवन जी—जी नहीं, उसकी तो वैसी ज़रूरत नहीं।

प्रेम०—भला इसमें लेहाज़ क्या''अच्छा वह पान की तश्तरी कहाँ रही? जरा, सुन्दर को तो खबर कर दो—मगही पान के बीड़े लिये आता रामू की दुकान से।

सुरेश—जी, अभी मँगाये लेता हूँ।

प्रेम०—लीजिए साहब, यही वह दुखिया है—भले घर की ठहरी, पर्दे में पली। गंगा मेले में गुम हो गई— आपने सुना ही होगा। जल्लाद के हाथों से छूटकर परसों आ पायी। इसपर कैसे क्या-क्या बीती है—चेहरा ही गवाह है। गुलाब का फूल-सा मुखड़ा सूख कर काँटा हो रहा है जैसे—हाँ, इस काँटे को फिर फूल में पलट देना तो आपके हाथ ठहरा।

भुवन जी—इस बिचारी के परिवार को आपने खबर कर दी है?

प्रेम०—जी, कर तो वैसे दी है मगर है भी कोई अपना! माँ-बाप तो कभी के उठ चुके, बस एक चचा या जाने कौन हैं—पर किसी के कानों पर जू न रेंगी। अच्छा जी, आप और कुछ जानना चाहते हों तो उसी से पूछ कर जी भर लें।

सुरेश—मगर पिताजी, उससे कोई क्या पूछे और वह बिचारी क्या कहे—कैसे कहे! उसकी सरबीतियाँ तो किसी से पर्दा नहीं—हाँ उसके दिल पर जो गुज़र रही है उसे तो वही जानती है या उसका अन्तर्यामी!

भुवन जी—जी हाँ, हमने देख-सुन ली—पूछना ही क्या है। आख़िर वह लाई गई हमारे इतमिनान के लिए, यह भी एक सज़ा ही ठहरी बिचारी की।

प्रेम०—अच्छा बेला, अब तुम जा सकती हो—कोई बात नहीं।

बेला—जी, जैसी मर्ज़ी!

(वह हाथ जोड़ लौट जाती है)

प्रेम०—अच्छा तो भुवन जी, क्या राय ठहरी?

भुव०—जी, देख रहा हूँ हवा का रुख—आसमान जो अभी साफ नहीं हो रहा है।

प्रेम०—आखिर कुछ खुलिये भी······

भुव०—क्या बताऊँ, उसे देखता हूँ तो घर छूटता है—घर देखता हूँ वो वह छूट जाती है। पिता जी ऐसे तने हुए हैं कि नाम सुनने को भी रवादार नहीं।

प्रेम०—(*सतीश की ओर मुड़ कर*) हाँ, तो सतीश तुम तो स्वतंत्र ठहरे—कोई वैसी अड़चन नहीं?

सतीश—जी सो तो है, मगर एक बहिन ठहरी, जिसकी शादी माधोपुर तय है, मंगनी भी हो चुकी। अब लीजिए, कल जाकर दूल्हे के बाप को किसी ने क्या कह दिया, वह आग-बबूले हो रहे हैं। हमारे यहाँ रिश्ते से ही इन्कार कर बैठे—माँ बिचारी का तो रोते-रोते बुरा हाल है आज।

मुकुल—तो फिर······

सतीश—बस बहिन के ब्याह से छुट्टी पाई और रास्ता साफ हो गया।

प्रेम०—यही एकाध महीने को बात है या कुछ ज्यादा देर की आशंका ठहरी?

सतीश—कैसे कहूँ-पहले अपने रूठे हुए मेहमान की नब्ज़ का पता पा लूँ। क्या जाने कोई नई मांग हुई तो लीजिए बेड़ा मझधार में जा पड़ा।

प्रेम०—भला, कल तुम क्या थे, आज क्या हो—पहचान भी नहीं आते। वह सारी फुर्ती हवा हो गई क्या?

सतीश—तो मैं आपको हवा बता दूँ—यह तो मुझ से होने से रहा····

प्रेम०—और तुम, तुम भई किशोर! तुम्हारे साथ तो परिवार की फांस नहीं?

कि०—जी, वैसी कोई बात नहीं, मगर······

प्रे०—तो यह फिर मगर-वगर क्या ?

कि०—यही कि अच्छा होता कि कुछ दिन साथ रहकर एक दूसरे को जान लेता, पहचान लेता तो फिर······

सुरेश का साथी—और क्या ! इस प्रस्ताव का मैं भी स्वागत करता हूँ। (*सुरेश का साथी उठकर बोलता है)*

प्रेम०—जी, श्याम भी मिले और कुल पर आँच भी न आये—है न ? इस नई दुनियाँ की सैर भी रही और इस दुनियाँ के होकर भी न रहे। दोनों हाथ लड्डू—क्या बात है !

कि०—जी नहीं, मेरा इशारा कुछ और है—मैं जान लेना चाहता हूँ कि वह अपनी भर अकेली ही है या अपने अन्दर कोई नया अंकुर भी साथ लिए आई है।

प्रेम०—नहीं-नहीं, ऐसा कोई अन्देशा नहीं।

कि०—आप क्या जानें—यह आपकी दुनियाँ नहीं।

प्रेम०—जाने दो, इतना तो जान रहा हूँ कि कल तक मैंने एक तमाशा ही देखा—बस। हक़ीकत तो आज देख रहा हूँ—कहाँ तुम्हारा वह जोश कहाँ आज···

कि०—यह होश—है न ?

प्रेम—लो, मैंने नाहक यह दर्द सर मोल ,लिया। देख लिया तुममें से कोई भी उसे अपनाने को तैयार नहीं।
(कोईजवाब नहीं—सुरेश भी सर झुकाये चुपचाप बैठा है। तब तक वह अपरिचित युवक उठकर सामने आता है)

अपरिचित युवक—जी, और कोई चाहे न हो, मैं तो तैयार आया हूँ। कोई शर्त नहीं, अगर-मगर नहीं। (*सभी मुड़ कर आँखें फाड़ कर उसे देखते हैं—कोई उसे पहचान नहीं रहा हैं)*

प्रेम० - (*खुश होकर*) ऐसा? जीते रहो, फूलो-फलो......

अ० यु०—जी, मुझसे एक बे-कसूर की ऐसी सज़ा देखी नहीं जाती। आखिर क्या किया है उसने कि उस पर कोई उँगली उठाये—वह तो हमारी सर-आँखों पर है बराबर।

प्रेम०—भगवान भला करे तुम्हारा—अपना परिचय·····

अ० यु०—क्या परिचय दूँ—कांग्रेस का एक सेवक हूँ बस।

सुरेश—कांग्रेस का ? मैंने तो कभी वहाँ आपको देखा नहीं····

अपरिचित युवक—तो मेरा कसूर ! हाँ अभी हाल की बात है·····

प्रेम०—अच्छा, आपका नाम जान सकता हूँ ?

अपरिचित युवक—जी, जोज़ेफ।

प्रेम०—लीजिये, तो आप क्रिस्तान ठहरे ! वही कहा···

जोज़ेफ–तो क्रिस्तान होना कोई पाप है क्या ? आखिर वह भी एक मनुष्य ही है—कोई जानवर नहीं।

प्रेम०—मगर, तुम यहाँ आये कैसे—किसने बुलाया, बोलो ?

जोज़ेफ—जी. हमारे अन्दर के भगवान ने—उस भगवान ने, जो हमारा, आपका हर का है बराबर।

मुकुल—अच्छा ! तो भगवान ने प्रेरणा दी ?

जोज़ेफ—जी, शैतान ने दी होती तो मेरा रवैया कुछ और होता—ब्याह का उम्मीदवार न होता। यह तो भगवान की ही आवाज़ थी कि तुम हिम्मत बाँध जाओ—इस दुखिया का उबार करो।/ यह तो मानी हुई बात है कि हिन्दू-समाज के हाथों तो किसी ऐसी सताई हुई—लुटी हुई अबला का उद्धार नहीं, इन्साफ नहीं। आपके यहाँ तो धर्म और समाज की वेदी पर औरत की कुर्बानी ही होती आई है बराबर। कसूरवार कौन और सज़ावार कौन—है न ?/

प्रेम०—तुम्हें पता है, यहाँ कसूर किसका रहा है—किसके हाथों बिचारी की यह गति हुई ? वह हिन्दू-समाज का नहीं—याद रखो।

जोज़ेफ—कोई भी हो वह—एक मुसलमान ही सही, उससे क्या—आखिर भले और बुरे कहाँ नहीं हैं ! मगर, हमारे समाज में जो भले हैं वे तैयार हैं बिचारी की आँखों के आँसू को अपनी आँखों में जगह देने और दस के सामने उसे अपनाकर उसकी सर-बीतियों को अपने सर उठा लेने के लिए। बला से, वह किसी लफंगे के हाथों रौंदी गई हो, कोई बात नहीं।

प्रेम०—तो क्या हमारे यहाँ कोई वैसा भला नहीं—किसी की आँख में पानी नहीं ?

जोज़ेफ—आपके यहाँ भले और बुरे का सवाल नहीं। आप चाह कर भी कोई राह ढूँढ़ न पायेंगे—समाज जो आपके सर पर नँगी तलवार लिए आठो पहर खड़ा है। देख लिया न, वादा करके भी मुकर गये सारे-कोई भी भार उठाने को तैयार नहीं—वह सनातनी हो या आर्य समाजी······किसका सर भारी हुआ है ?····

प्रेम०—नहीं-नहीं, सनातनी चाहे जैसा भी रहे, मगर हममें से कोई इस कर्त्तव्य से मुँह मोड़ता है वो वह कहीं का नहीं रह पाता।

जोज़ेफ—ऐसा ? बनिये मत—हाथी के दाँत दिखाने के और हैं, खाने के और। आप कहेंगे खूब—लेक्चर भी झाड़ेंगे लाजवाब, पर समाज को अंगूठे दिखला कर इस ओर क़दम उठा पायें—यह बूता तो किसी हिन्दू में नहीं।

मुकुल—देखो जी, ज़बान सम्हाल कर ज़रा होश की बात करो।

जोज़ेफ—जी, सच्ची बात तो मीठी होने से रही। गुस्ताखी माफ़, तो एक क़िस्सा—एक सच्ची घटना आपके सामने रख दूँ।

मुकुल—हाँ-हाँ, कहिये-ज़रूर कहिए।

जोज़ेफ—एक हमारे अपने ही ठहरे-जानी-पहचानी-नाम जान कर आप क्या करेंगे। लेक्चर झाड़ने में अपना सानी नहीं रखते, और लेक्चर भी ऐसा पुर-असर कि हमारे कान पर आया नहीं कि कलेजे तक बोल उठा। तो उस दिन उनके लेक्चर में हम भी मौजूद रहे—शराबबन्दी पर झूम-झूम कर कहे जा रहे थे। औरतें भी काफी तादाद में आ गईं। उन्हें शायद पता न था कि उनकी अपनी घरनी भी एकाध हमजोलो के साथ वहीं बैठी सुन रही हैं—हज़ारों की भीड़ में नज़र नहीं आईं। तो लेक्चर झाड़कर घर आये और जब रात खाने के वक्त अपना हसब-

मामूल पेग तलब किया तो बीबी लगी आँखें फाड़ उनका मुँह ताकने। लीजिए, उबल पड़ी—मैं तो तुम्हारा लेक्चर सुन तमाम बोतलें तोड़-फोड़ कर कुँए में डाल चुकी। बस, आप उखड़ पड़े—अबे पगली, वे सारी बातें तो औरों के लिए थीं—कुछ अपने लिए नहीं।

प्रेम०—सुना न, क्या इशारा है यह...और तुम्हीं लोग न रह आये हमारे हाथ-पैर यहाँ— सब कुछ!

जोज़ेफ—माफ़ कीजिये, यह इशारा उधर नहीं। आप पर था—समझे?

प्रेम०—मुझ पर? मैं तो पचास के उस पार जा चुका हूँ—मेरे साथ शादी का सवाल तो.......

जोज़ेफ—आप न जा चुके हैं, मगर आपके ये साहबज़ादे, जो एड़ी का पसीना चोटी तक लाकर उसे एक जालिम के पंजे से छुड़ा लाये। बधाई तो उन्होंने खूब पाई, मगर शाबाशी तो तब होती जब इस झाँझर नइया को मझधार में न छोड़, अपने किनारे लगा पाते—पतवार तो उनके हाथ ठहरी।

किशोर—हाँ साहब, यह तो पते की बात है। वह रास्ता दिखा पायें तो फिर क्या है—लीजिये, हम भी उनके एक-एक क़दम के पीछे.......

सुरेश—मगर...मगर, मैं तो दूसरी जगह ज़बान जो दे चुका हूँ।

जोजेफ—तो इस ज़बान के तले कोई दूसरी ज़बान भी है क्या?

सुरेश—सच मानिये, मेरी शादी तो कभी की हो चुकी होती, बस कुछ ऐसी...(*रुक जाता है*)।

जोजेफ—ऐसी कैसी? रुके क्यों—बात की बात में बात गढ़ लेने की कला तो आते-आते आती है—है न? यह तालीम तो आप अपने पिताजी से लें तो बड़ी बात होती।

प्रेम०—लो सुरेश, अब मुझ पर भी लगी छींटे-कशी होने। तुम्हें तो भई, जी खोल उसे स्वीकार कर लेना है—जैसे हो।

मुकुल—जी, यही इस प्रश्न का हल भी ठहरा। और तुम्हारे पिता के मुँह की लाली भी·····

सुरेश का साथी—हाँ भई सुरेश, तुम मैदान ले पाते तो फिर क्या ? रास्ता ही खुल जाता।

सुरेश—नहीं भई, कहा न—मैं दूसरी जगह ज़बान जो दे चुका हूँ। अब मैं उससे मुँह मोड़ताहूँ तो उस बिचारी की क्या गति होगी भला·····

भुवन जी—आप की बात खाली न जायगी। तैयार हैं हम—हममें से कोई भी उसे खुशी-खुशी ब्याह लेगा।

सुरेश—और वह राज़ी न हुई तो ?

मुकुल—राज़ी क्यों न होगी ?···यह धनी-मानी दोनों ही ठहरे—तुम से बीस ही हैं, उन्नीस नहीं।

सुरेश—यहाँ उन्नीस-बीस का सवाल नहीं—दिल आने का सवाल ठहरा।

मुकुल—जी, जैसे कि उसने दिल का दमामी पट्टा दे रखा है तुम्हें।

प्रेम०—तुमने हमसे भी तो कहा होता—हमारे फरिश्तों को भी खबर नहीं।

सुरेश—कल मैं इसी मिशन से यहाँ आया—सोचा था जाने के पहले······

सुरेश का साथी—मगर तुमने हम लोगों से भी पर्दा रखा—ऐसा क्यों ?

सुरेश—तो हुआ क्या ? यहाँ तो कुछ और ही गुल खिल चुका था।

जोज़ेफ—ख़ैर, आसमान साफ़ हो गया न—कोई भी उसे अपनाने को तैयार नहीं। लीजिये, मेरे मुँह की लाली रह गई—नहीं तो मेरा कहाँ गुज़र यहाँ। अच्छा होता कि आप इस बिचारी को मुझे सौंप देते—चर्च जाकर मैं आज ही शादी का रस्म अदा कर देता। ऐसी दुखिया का उबार तो हिन्दू-समाज में आसमान का फूल ठहरा। अब आप समझ गये होंगे मैं यहाँ क्यों आया—कैसे आया।

प्रेम०—अच्छा जी, आप ज़रा दम धरें, मैं सुरेश से बातें कर लूँ—जान लूं, समझ लूँ कि क्या ऐसी बात है जो उसके रास्ते में काँटे बो रही है...सच मानिये, मुझे अब तक कोई ऐसी सूचना नहीं थी।

जोज़ेफ—अब क्या बातें होंगी—सुबह का रंग देख कर हम दिन का अन्दाज़ पा लेते हैं—सुरेश जी का रुख़ तो साफ़ है।

प्रेम०—नहीं-नहीं, दो चार मिनट में आता-जाता ही क्या है—तुम ऐसे सिर क्यों हो रहे हो ?

जोज़ेफ—अच्छा जी, जैसी मर्ज़ी। हम बाहर ही ठहरते हैं। आप बातें कर लें। अगर यह साहब आप की बातें मान लें तो फिर क्या—बस, बेड़ा ही पार है। हमारे कितने साथी-संगी भी ऐसी ही एकाध बात से खिंचकर क्रिस्चियन समाज में आ मिले थे। अब आप रास्ता दिखा पायें तो अजब नहीं कि हमारी सूखी उम्मीदें भी फिर हरी होने को आयें।

प्रेम०—यह क्या कह रहे हैं आप ?

जोज़ेफ—पते की बात है यह। हिन्दू-धर्म से किसी को कोई इन्कार नहीं—क्या नहीं है उसके अन्दर? ज्ञान और अध्यात्म की ऐसी ऊँची मंज़िल तो कहीं मिलने से रही, मगर हाँ आपके समाज के अन्दर जैसी तंग नज़री का दौर है—छूत-अछूत, ऊँच-नीच और औरतों के साथ घोर अन्याय—कसूर है मर्द का, ज़ुल्म है सरासर उसका और कसूरवार होती है, सज़ा पाती है वह बिचारी। ऐसी ही छोटी-मोटी बातों को शह पाकर यहाँ इस्लाम पनपा, क्रिस्तान उठे और लीजिये दोनों ही दिन दूने रात चौगुने फूलते-फलते चले आये। क्या अजब—वह दिन दूर नहीं कि इनका सिक्का आसमान चूमे और आप की भारत माता की छाती दो टूक होकर न रही—तो...।

प्रेम०—हाँ भई, बात तो तुम्हारी पते की है। मैं भी देखता रहा हूँ कि महर्षि दयानन्द न आये होते—हमारी आँखों

में उंगलियाँ डाल हमारी भूल दिखा देने तो अब तक !···हिन्दू-समाज के धुर्रे उड़ गये होते—धुर्रे ।

जोजेफ—तो कहा न, अगर सुरेश जी आर्य-समाज का कवच बाँध मैदान में उतर कर सनातन से मोर्चा ले पाये—इस बिचारी से खुशी-खुशी विवाह कर लें तो हमारी आँखें भी खुल कर रहेंगी—अपने बिछुड़े हुए घर की पौर पर वापस आने में आसानी होगी। आप भी नफ़े में रहेंगे—हम जैसे नौजवान सेवकों का एक दल बराबर आपका साथ देगा।

प्रेम०—अच्छा तो आपलोग ज़रा बाहर ठहरें—बुरा न मानेंगे।

जोजेफ—जी, कोई बात नहीं।

(सब बाहर जाते हैं)

प्रेम—देखो सुरेश, मेरे जीने-मरने का सवाल है यह—तुम्हारे हाथों मेरा यह अपमान !

सुरेश—पिता जी, सच मानिये, मैं खुशी-खुशी आपकी बात सर आँखों से मान लेता, मगर मैं रानी को अपना चुका हूँ—महीनों साथ रह चुका हूँ, बस एक दिखावे का रस्म बाकी है।

प्रेम०—*(रुख़ बदल कर)* मगर, तुमने ऐसा किया क्यों—शादी हुई नहीं और तुमने उसे अपनी मान ली—एक रखेली ? ऐसे गिर गये तुम—छी-छी !··· ओफ़ ! बाप का सबसे बड़ा दुश्मन उसका बेटा ही ठहरा—उसी के हाथों अकसर उसकी ज़िन्दगी की सारी जमा-पूँजी दो पल में लुट जाती है।

सुरेश—पैसे की······

प्रेम०—अजी, प्रतिष्ठा की भी—नाम ऊँचा हो या गिर जाय। देखो न, कल तुम्हारी ही वजह मेरा नाम ऊँचा उठा—तुम उसे उबार कर लाये, आसमान से सितारे तोड़ लाये जैसे। मगर, आज ? इस भरी मजलिस में तुमने अपने हाथों मेरी नाक···जाने दो···कहीं का न रहा मैं—उतर गया चेहरे का पानी··· *(और उनकी आँखों में आँसू उमड़ आते हैं—चेहरा गिर जाता है।)*

सुरेश—मगर, मैंने झूठ क्या कहा ? ज़रा ठंढे दिल से····

प्रेम०—सच या झूठ—जानो तुम, तुम्हारा ईमान। मगर कहो तो सीने पर हाथ रख—यहाँ पर किसी ने उसे सच माना। मुकुल ही से पूछ लो न—वह क्या समझ रहा है तुम्हें आज।

सुरेश—चाहे कोई कुछ समझे—मुझे मान मिले या न मिले, पर रानी को ज़बान देकर मैं पलट जाऊँ—जान रहते तो पिता जी····

प्रेम०—कौन है वह रानी—सुनूँ भी।

सुरेश—कालिज में कुछ दिनों साथ ही पढ़ती रही—हम दोनों ही दर्शन के छात्र रहे। कोई दो साल होने को आये, उसके पिता गर्मी की छुट्टी में साथ लिये लंडन गये। वहीं जाने कैसे क्या हुआ—चल बसे। रानी बिचारी जैसे-तैसे लौट आई। माता तो पहले ही उठ चुकी थी—जमा पूँजी भी कोई वैसी नहीं। भाई बिरादर यहाँ कोई रहा नहीं—हो भी तो कोई सरोकार नहीं। बिचारी हाथ-पैर मार पड़ोस के स्कूल में अध्यापिका हो रही। वहीं, आसपास एक छोटा-सा घर लिये रहती है। सामने पार्क है—पार्क के एक सिरे पर हम हैं। अब, हम और वह कैसे एक दूसरे के नज़दीक आते गये—चाहे-अनचाहे, जाने-अनजाने, यह दास्तान तो ज़बान के दायरे में आने से रही। क्या कहूँ—कैसे कहूँ··

प्रेम०—मगर, तुम उसे यों अन्धा-धुन्ध प्यार क्यों करनेगये—यह तो बड़ी वैसी-सी बात ठहरी····

सुरेश—(रुक कर) इस क्यों औ· कैसे का जवाब नहीं। कैसे क्या हो जाता है राम जाने। कुछ बस है अपना ?

प्रेम०—तो फिर क्या ऐसो बात है जो तुम यों अपने को भूल बैठे ?

सुरेश—क्या कहूँ क्या—बड़ी सीधी-सादी वो ठहरी वह। म वहाँ न होते और आपस का वैसा मेल-जोल न होता तो अजब नहीं कि युसुफ उस पर भी वार कर बैठता—जैसा छँटा हुआ आवारा है वह।

प्रेम०—युसुफ ! यह युसुफ कौन है ?

सुरेश—उसी पड़ोस में एक मुसलमान सज्जन हैं—मिर्ज़ा साहब—रानी के पिता से भाई चारा ही रहा बराबर। उसी घर का वह कोई लड़का या क्या है—पता नहीं। शरीफ की सजधज है जरूर—मगर है एक नम्बरी शोहदा—कोई शक नहीं। मिर्ज़ा साहब की नाकों में भी दम कर रखा है उसने। बेला को उड़ा ले जाने में भी शायद उसी का हाथ भरपूर रहा—जहाँ तक पता पाया है हमने।

प्रेम०—मगर मैं पूछता हूँ, तुमने आज तक पर्दा क्यों रखा मुझसे ?

सुरेश—मैं सोचता था कि जब तक एम० ए० पास कर मैं अपने पैरों पर खड़ा न हो पाता—आप की स्वीकृति मांगना अपना सर खपाना ठहरा।

प्रेम०—(*कुछ सोच कर*) अच्छा जी ठहरो, समझौते का रास्ता वो दिखता है एक--तुम्हारी हमारी दोनों की आन निभ जायगी। तुम बेला के गले में माला डाल अभी उसे उठा लो, फिर एकाध दिन बाद पढ़ाई के हीले शहर जाकर अपनी रानी से जैसी खुशी विवाह कर लेना। मैं कल ही वहाँ पहुँच कर रानी को इतमिनान दे दूँगा--अपने सामने शादी का रस्म तक अदा करा दूँगा। काश, यहाँ की बात फूटनी भी है तो वैसी परिस्थिति में उसे सम्हाल रखने की जिम्मेवारी मेरी रही—घबराओ नहीं। मगर, इस दो-तरफी आग में मेरी आबरू न लो। मैं क्या जानता रहा कि यह प्रान्त ऐसा गया-बीता है—पढ़े-लिखे भी यों मुँह चुरा लेंगे अपने बड़े-बूढ़ों के डर से।

सुरेश—जी, यही तो बात है—मैं खुद ही हैरान हूँ कि यह कैसे क्या हो गया आखिर।

प्रेम०—जो हो, दुनियाँ में कोई ऐसी मुश्किल नहीं, जिसका हल नहीं—जो की हार तो जिन्दगी की हार ठहरी।

तुम्हारी नीयत साफ है तो सौ खून माफ—समझे। और यह बेला तो तुम्हारे सर थोड़े ही आती है—तुम अपनी रानी को लिए शहर में बने रहना। यह बिचारी मेरी देख-रेख में यहीं रहेगी—अपने एक सहयोगी के घर। हाँ, कहीं रानी को यह इन्तजाम भी स्वीकार न होगा—सौत का नाम भी नहीं पी पायेगी वह, तो यकीन मानो, तुम्हारे सुख-स्वाच्छन्द्य परकोई आँचन आने पायेगी।

सुरेश—सो कैसे पिताजी ?

प्रेम०—बस एकाध महीने बाद उसे साथ लिए लाहौर अपने हेडक्यार्टर पर जा रहूँगा। वहीं अपने किसी विश्वास-पात्र युवक के हाथों सौंप दूँगा आखिर वहाँ किसी को क्या पता है कि वह कब किसी की क्या होकर रह चुकी है। और, हो भी तो कोई बात नहीं—वहाँ का हवा-पानी यहाँ जैसा सड़ा-बुसा नहीं—अच्छे-से-अच्छे मिलेंगे, देख लेना। लो बस, अब देर नहीं—लगे हाथों इसे कर गुजरो।

सुरेश—जी, मैंने यह समझौता मान लिया। बस, जल्द-से-जल्द वहाँ जाकर रानी को आप इतमिनान दे दें।

प्रेम०—तो लो, अब उन्हें अन्दर लिये आओ।

(सुरेश जाता है और सब के साथ वापस आता है।)

प्रेम०—लीजिये साहब, सुरेश ने मेरी आन रख ली।

जोजेफ—क्या सच ? वह दस के सामने उसे उठा लेंगे ? है यह बूता एक हिन्दू युवक की रगों में—यह तेज, यह त्याग ?

प्रेम०—भला, ऐसा क्यों कह रहे हैं आप ?

जोजेफ—चूँकि, अबतक तो ऐसी कोई भी पोड़िता आप के यहाँ गर्दन में हाथ ही पाती आई—हार नहीं।

प्रेम०—तो लो, आज उसकी गर्दन में हार भी देख लो, सर पर तिलक भी।...हाँ भई मुकुल, उसे अब ले ही आओ—यहीं पर अपने तरीके से व्याह का रस्म अंजाम ही कर दिया जाय...शुभस्य शीघ्रम्—ऐसे इन्हें इतमिनान नहीं।

जोज़ेफ—कैसे हो, कहिये ? जो दस के सामने कहना उसे लगे हाथों करके दिखा देना—यह गुन तो बड़े-बड़ों में भी कोई चिराग लेकर ढूँढ़े तो शायद····

प्रे०—लीजिये, वह आही गई। तुम भी अपने हाथों में फूल ले रखो—आशीर्वाद जो देना ठहरा····

जोज़ेफ—जी जरूर ! आज का दिन तो इस गये-गुज़रे-प्रान्त में एक नया दिन है—सुनहला। लीजिए हिन्दू-जाति की प्रगति एक नये मोड़ पर आगई—नई चेतना, नई दिशा।

(बेला सर झुकाये आती है—पीली साड़ी, पीली अंगिया, बाल संवारे—चेहरे पर प्रसन्नता की एक लहर है। मुकुल हाथ मे थाल लिये है—माला और फूल)

प्रेम०—*(बेला की ओर मुड़ कर)* तो बेला, तुम्हारी मर्ज़ी है न—सुरेश को तो तुम जानती ही होगी ?

बेला—मेरा रोआँ-रोआँ जान रहा है उन्हें। वह न होते तो मैं कहीं-की होती—कहिये ? मैंने तो जितना खोया नहीं, उससे कहीं अधिक पाया—अब चाहिये क्या ?

(सुरेश के पिता आगे बढ़ कर बेला को ले आते हैं सुरेश के बगल में खड़ा करते हैं—सुरेश की चादर के खूँट को बेला के आँचल से बाँध देते हैं और एक-एक माला दोनों के हाथ में रख देते हैं।)

प्रेम०—तो भई, यह जोड़ी जीये, फूले-फले—हमारी तो यही कामना है, यही प्रार्थना।

(बेला सुरेश के गले में माला डालती है, सुरेश मुस्करा कर बेला के गले में माला डालता है। चारो ओर से फूलों की वर्षा होती है। उसी पल चुपके से जोज़ेफ हाथ के कैमरे से उनका फोटो ले लेता है।)

प्रथम अङ्क

तृतीय दृश्य

[रानी के मकान का कमरा । दो कोच. है, दो-चार कुर्सियाँ—एक मेज़ भी । वहीं रानी चुप खड़ी है—बैठती है, फिर खड़ी हो जाती है । दरवाजे की ओर उसकी आँखें टंगी हैं जैसे—आँखों में नमी भी है]

(दीनू का प्रवेश)

रानी—लौट आये तुम दीनू—बड़ी देर की ।

दीनू—क्या बताऊँ, गाड़ी जो लेट थी—डब्बा-डब्बा ढूँढ़ता रहा ।

रानी—तो वह आज भी नहीं आये...देख लिया तुमने डब्बा-डब्बा ।

दीनू—जी, जभी तो देर हुई ।

(दीनू बाहर जाता है—दूसरी ओर से युसुफ का प्रवेश)

रानी—(चौंककर) फिर तुम आये—बे-बुलाये ।

युसुफ—*बे-बुलाये ! हरगिज़ नहीं—'खुदा के घर भी न जायेंगे बे-बुलाये हुए'* ।

रानी—तो फिर यह कैसे क्या ?

युसुफ—उससे क्यों नहीं पूछती जो सीने पर सवार मुझे यहाँ बेबस खींच लाता है ।

रानी—सीने पर सवार—कौन है वह ?

युसुफ—तुम्हें वैसा पता क्या हो—तुम तो उसे देखती नहीं, देखते हैं हम ।

'तुम क्या देख सकती हो अपनी अदायें
हमी देखते हैं जो हम देखते हैं'

नहीं-नहीं—'निगाहे मुहब्बत दिखाती है सब कुछ
न तुम देखते हो न हम देखते हैं।'

रानी—बनो मत। कहो न, कौन खींच लाया है तुमको यहाँ तक ?

युसुफ—और कौन ? तुम्हारी निगाहों के चमकते जुगनू। नहीं-नहीं, तुम्हारी बेबसी के मौन सन्देश लिये इन आँखों में काँपते आँसू भी। तुम्हें पता चाहे न हो पर हम तो उसी दर्द-भरी पुकार पर खिंचे आते हैं—चारा नहीं।

रानी—लो, ऐसी हम-दर्दी किसी और को देना! फिर आये प्यार जताने—अन्दाज चाहे कुछ हो आज।

युसुफ—*(हँसकर)* जैसे कि प्यार कभी कहा जाता है या किया जाता है!

रानी—तो फिर यह क्या रवैया है आखिर ?

युसुफ—जी, प्यार होता है—चाहे-अनचाहे, कोई करता नहीं।

'घटा खुद ही बरसती है, वह बरसाई नहीं जाती।'

यहाँ न अपना अख्तियार है, न सोच-समझ की गुंजाइश।

रानी—कैसी बातें करते हो तुम भी ?

युसुफ—पते की बात है—पते की। शमा से न पूछ लो कि क्या वह जादू है कि परवाना खिंचा आता है उस पर जान देने अन्धाधुन्ध... बेबस। तुम तो कहोगी, शमा क्या जाने—मैं भी कह रहा हूँ, परवाना क्या जाने। गुलाब के फूल पर भौंरा क्या बग़ैर किसी उम्मीद, किसी लगाव के ही मँडराता रहता है आठो पहर ?

रानी—मगर, तुमको तो जता चुकी हूँ कि उस फूल का भौंरा कोई और है।

युसुफ—यही भूल तो तुम्हें ले डूबी। वह तो कली-कली और फूल-फूल का भौंरा ठहरा—कुछ तुम्हारी ही डाल का बुलबुल नहीं।

रानी—तुम तो अपनी ही नज़र से न देखते हो उसको।

युसुफ—कसूर माफ, तुम भी तो अपनी ही नज़र से न देखती हो उसको—वह नज़र तो तुम्हारी आँख पर पर्दा है जैसे। जभी तो हक़ीक़त तुम्हें नज़र आने से रही।

रानी—(मुस्कुराकर) तो आखिर वह हक़ीक़त क्या है—सुनूँ भी।

युसुफ—यही कि तुम चाहती हो उसको और वह चाहता है किसी और को—हाँ तुम्हारी आँखें खुलें तब न ! मैं तो जाने कब से चाहता रहा हूँ कि तुम्हारी आँखों में उँगलियाँ डाल दिखा पाता कि हक़ीक़त क्या है।

रानी—तुम्हें ग़रज ?

युसुफ—क्या बताऊँ—क्या...उसे ज़बान तो अदा कर नहीं पाती।

'मुहब्बत मानी ओ अल्फ़ाज़ में लाई नहीं जाती,
यह वह नाज़ुक हक़ीक़त है, कि समझाई नहीं जाती।'

काश, कोई मेरे दिल से पूछता कि तुम्हारे लिए उसके रेशे-रेशे में यह दर्द क्यों है—यह तड़प क्यों है ! और आज जब वह तुम्हें ठुकराकर चल दिया तो मेरे साथ दिल का तकाज़ा ही नहीं, यह फ़र्ज़ भी हो गया....

रानी—तुम्हारी भी क्या बातें हैं भला—शर्म नहीं आती—मुझे जताकर जो गया है वह। कल वह न आ सका, नसही—आज तो किसी वक़्त वह आकर रहेगा—देख लेना।

युसुफ—आ चुका वह। जो दिन गये—गये। घड़ी की सूई तो पीछे लौट नहीं पाती।

रानी—अजी, वह कहीं भी रहे—उससे क्या ? तुम्हें पता है—मैं और वह दो नहीं।

युसुफ—सब पता है ! तुम्हीं को पता नहीं कि तुम और वह दो क्या—एक दूसरे से मीलों दूर हो और दोनों के बीच वह गहरी खाई खुद चुकी कि ख़ुदा पनाह दे।

रानी—क्या बात है—खुलते क्यों नहीं ? क्या वह खाई है—क्या हक़ीक़त ?

युसुफ—तो देखोगी ? जैसी मर्ज़ी—लो देखो, यह रही वह सच्ची तस्वीर !

(युसुफ चटपट रानी के हाथों में सुरेश और बेला के विवाह का फोटो रख देता है।)

रानी—(चौंक कर) हैं, यह कौन ? सुरेश। और यह—यह कौन है नई ?

युसुफ—उसकी अपनी बीबी—जिसे पिया चाहे वही सुहागिन, समझी।

रानी—और वह जो पीछे खड़ा है उनके....

युसुफ—सुरेश के पिता ठहरे वह, जी।

रानी—आखिर यह लड़की है कौन—कहाँ की?

युसुफ—मैं क्या जानूँ—जाने वह।

रानी—तो क्या दोनों की शादी भी······

युसुफ—जी, अखबार तो यही कह रहा है।

रानी—अखबार—कैसा अखबार?

युसुफ—यह क्या है—लो देखो।

(रानी अखबार हाथ में लेकर पढ़ती है—माथेपर बल पड़ जाते हैं, आँखों से शरारे छूटते हैं जैसे।)

रानी—अच्छा, तो यह वही लड़की ठहरी—वही जिसकी तलाश में उसने आसमान सर पर उठा रखा था इधर···

युसुफ—होगी—मुझे क्या पता?

रानी—ओह! ऐसा दुमुहाँ साँप—आस्तीन का साँप निकला। ओफ! कहीं की न रही मैं·····

(कुरसी पर गिर जाती है)

युसुफ—तुम्हारा क्या गया, गया वह—गोली मारो ऐसे बद-ज़ात को। मेरी रानी! अल्लाह का शुक्र है कि वह ज़हरीला साँप अब तुम्हारी आस्तीन में न रहा—पह-चान लिया गया।

रानी—मगर, अपना ज़हर तो हमारे अन्दर छोड़ गया है वह ···वह जो···

युसुफ—मुझे उस ज़हर की परवा नहीं। मैंने उस विष को पचा कर रस न बना दिया तो मेरा नाम न लेना कभी। इतमिनान रखो, तुम पर कोई आँच आने की नहीं। याद है न, मैंने उस दिन क्या कहा था तुम से·····

रानी—सो क्या···मेरे होश-हवास का पता भी है आज?

युसुफ—यही कि तुम्हारी हँसी-खुशी के हम निवाले हम पियाले तो जाने कितने होंगे, मगर आज तुम्हारे आँसू को अपनी आँखों में उठा ले, तुम्हारे दर्द को अपने सीने में

समेट ले—वह दर्द शरीक तो तुम्हारे सामने खड़ा है और ख़ुदा गवाह है, सर के बल खड़ा रहेगा बराबर।

रानी—ओह ! कहाँ से कहाँ मेरी ज़िन्दगी में आया वह—बैठे-बिठाये आ गई उसकी बातों में !

युसुफ—वह आया था तुम्हें नशा पिलाने, पिलाता गया, तुम आँख मूँद पीती रही; पिला-पिला कर तुम्हें गिराने भी—गिरा दिया होता अगर मैं आकर तुम्हें थाम न लेता आज—

'नशा पिला के गिराने तो सब को आता है,
मज़ा तो जब है कि गिरते को थाम ले साक़ी !'

रानी—तो सच ? तुम मुझे थाम लोगे—उठा लोगे ?

युसुफ—तुम्हें इतमिनान नहीं—दुनियाँ एक ओर, तुम एक ओर।

रानी—मगर, मैं जो गिर चुकी हूँ—मेरे अन्दर भी···जानते हो न·····

युसुफ—बस नाम न लो—जो कहा सो कहा—कोई और जान गया तो तुम्हारी जान पर आ जाने का डर है। किसी की पौर पर तुम्हें खड़ी होने की भी जगह नसीब न होगी—यह हिन्दुस्तान है, लण्डन नहीं ? रही हमारी बात तो पूछना क्या, जो तुम्हारा है वह हमारा भी रहा बराबर—हमारा ही बच्चा, हमारी ही आँखों का तारा, समझी।

रानी—ओहो, इतने अच्छे हो तुम—आदमी नहीं, फरिश्ता···

युसुफ—शरीफ का लहू जो है हममें। तुम्हारे लिये लहू-पानी एक करना पड़े तो उठा न रखेंगे—हो जो हो।

रानी—कहाँ हमने पत्थर को ईश्वर समझ रखा था और ईश्वर को पत्थर !

युसुफ—हमारी नज़र में तो कोई पत्थर है न ईश्वर—बुत न ख़ुदा। बस जो है सो तुम हो, तुम्हारा ही जलवा··· 'जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है'।

रानी—हमारी नज़र में आज तुम क्या हो गये—कहाँ से कहाँ—क्या कहूँ, कैसे कहूँ, यह ज़बान तो उसे अदा करने से रही।

युसुफ—बस, अब देर नहीं, यहाँ से चली चलो—कहीं दूर···अभी किसी से कुछ कहना नहीं—दुनियाँ जो बड़ी वैसी है, समझी।

रानी—मगर, डर किसका—हम तो खुशी-खुशी तुम्हारी हो रही हैं आज—चाहे कोई कुछ कहे, इधर परवाह नहीं।

युसुफ—सो तो है, मगर हमारी-तुम्हारी शादी कब क्या फितना खड़ा कर दे—कौन कहे। विलायती हवा-पानी में रह आई हो तो क्या, तुम्हारे जात-भाई तो कूएँ के मेढ़क ठहरे—वह सनसनी और सरगर्मी खड़ी हो जायगी कि जो कुछ न हो, कम है। लो बस उठो, मोटर हाजिर है।

रानी—बस, अभी आई मैं···दीनू, ओ दीनू!

(रानी नेपथ्य की ओर चली जाती है, दूसरी ओर नेपथ्य पर खड़ा होकर युसुफ पुकारता है)

युसुफ—लो भई जफ़र, हाथ मिलाओ, मुहरा लाल हो गया—लाल। बाजी तो बस इस फोटो के हाथ रही···अन्दर आओ—अंन्दर।

(ज़फर का प्रवेश)

जफ़र—लीजिए, मुबारिक-मुबारिक।

(दोनों हाथ मिलाते हैं—एक दूसरे के गले मिलते हैं)

युसुफ—ज़रा इस घर पर भी एक नज़र रखना···बम्बई चला बम्बई···तुम्हारा एहसान तो मैं भूलने से रहा।···लो वह आ गई···आओ मोटर तक आओ।

(जफर और युसुफ बाहर सरक जाते हैं। दूसरी ओर से रानी और दीनू का प्रवेश—रानी के हाथों में एक हैण्ड-बैग है।)

रानी—हाँ-हाँ, भूल हो रही है—ले दीनू, यह अंगूठी ले रख—उसे वापस कर देना·····समझा न कौन·····अरे वही दुरंगा······नाम न ले! और हाँ मेरी तस्वीर, मेरी चिट्ठियाँ माँग कर रख लेना—भूलना नहीं। किसी से कुछ कहना नहीं।

दीनू—तो आप ज़ाती कहाँ हैं?

रानी—क्या जाने जन्नत, क्या जाने जहन्नुम।

दीनू—आखिर लौटती कब हैं ?

रानी—पता नहीं।...हाँ, तुम यहीं रहना—कहीं जाना नहीं, समझा।

(युसुफ का प्रवेश)

युसुफ—अरे चलो भी—मोटर तैयार है...ज़फर को समझा दिया है, तुम्हारे जरूरी सामान पैककर भेज देगा वह। *(दोनों बाहर जाते हैं, दीनू हक्का-बक्का-सा खड़ा देखता है, फिर मुड़कर कोच पर जा बैठता है—कभी पैर पसार कर बैठता है, कभी ग्रामोफोन बजाता है और आँखें बन्द किये सुर-में-सुर मिला कर गाता भी है)*

(अखबार वाले का प्रवेश)

दीनू—लाओ, इधर अखबार रख दो।

अख०—तुम्हारी मालकिन कहाँ रहीं—रानी देवी।

दीनू—*(शान से)* तुम्हें ग़रज़ ?

अख०—*(हँस कर)* तो तुम अखबार पढ़ पाओगे भला ?

दीनू—*(शान से)* तुम्हें ग़रज़ ?

अख०—पगला है क्या ? *(आँखें फाड़ उसे देखता है। कुछ समझ नहीं पाता है और उलटे पाँव वापस जाता है।)*

(सुरेश के पिता का प्रवेश)

प्रेम०—अरे ! यह क्या रवैया है यहाँ—यह कौन ?

दीनू—आओ भई, आओ, बड़े वक़्त पर आये तुम—लो कोई लहरदार गाना तो सुनाओ जी खोल। *(उठ खड़ा होता है)*

प्रेम०—भला कोई गवैया हूँ मैं जो दर-दर गाकर माँगता फिरूँ।

दीनू—तो फिर यहाँ कैसे ?

प्रेम०—तुम्हारी वह रानी देवी हैं—यहीं रहती हैं न ?

दीनू—जब थीं तब थीं—आज मैं हूँ....मैं—समझे।

प्रेम०—मगर, मैं तो उनको ढूँढ़ रहा हूँ—तुम्हें नहीं।

दीनू—तो फिर रास्ता देखिये—रास्ता...वह जा चुकीं—दूर, बहुत दूर।

प्रेम०—कहाँ जा चुकीं—कहो भी।

दीनू—*(हाथ मटका कर)* क्या जानें जन्नत, क्या जानें जहन्नुम, समझे।

प्रेम०—(*दीनू के कंधे पर हाथ रखते हुए*) अरे भई, साफ खुलते क्यों नहीं—भला मुझ पर ऐसी बेरुखी…

दीनू—(*नर्म होकर*) अच्छा जी, क्या इनाम देंगे—बोलिये ?

प्रेम०—लो भई, यह रुपया रख लो—अपनी पसन्द की कोई चीज़……

दीनू—तो ज़रा ठहरिये—अभी पता लिए आया……

प्रेम०—तो चले कहाँ ?

दीनू—यहीं पड़ोस में, बस अभी आया, देर नहीं।

(*दीनू का प्रस्थान—दूसरी ओर से सुरेश का प्रवेश*)

प्रेम०—हैं ! तुम कैसे आये यहाँ—अपनी बहू को किस पर छोड़ रखा।

सुरेश—वह भी साथ ही आई है—पिता जी !

प्रेम—साथ ही आई है ? कहाँ है वह ?

सुरेश—वह, वहाँ क्या सामने है, दो कदम पर (*नेपथ्य की ओर इशारा करता है*) धर्मशाले में कमरा न० १०। कल रात की गाड़ी से साथ लिये जायेंगे आप।

प्रेम०—मगर, तुम उसे यहाँ क्यों लाये ?

सुरेश—उस शैतान की पहचान कराने।

प्रेम०—शैतान—कौन शैतान ?

सुरेश—वही जिसने उसे मेले से उड़ा कर महीनों यहाँ-वहाँ साथ रखा—क्या-क्या जुल्म नहीं ढाया।

प्रेम०—तो वह शैतान यहीं ठहरा क्या ?

सुरेश—जी, जो हुलिया वह देती है उससे तो साफ पता चल गया कि वह वही लफंगा है. युसुफ, जो रानी के सर पर भी मँडराता रहा अक्सर। मिर्ज़ा साहब जैसे शरीफ का नाम भी बदनाम कर रखा। जानें कौन है वह उनका ? जो भी हो—बड़े आये हैं हज़रत, जी ! बिलायती वज़ेदारी जो ठहरी मगर, पुलिस के ज़रिये छठी का दूध याद न करा दिया तो……

प्रेम०—भला सोचो तो, अब वह तुम्हारी बहू ठहरी, उसे फिर पुलिस के मकड़जाले में लिये जाना…

सुरेश—कोई बात नहीं—वह खुद तैयार है। (*ज़रा रुक कर*)

अच्छा होता कि रानी से भी मिल पाती वह....वह उसे जान लेती तो अजब नहीं, मेरी जान की उबार हो पाती।

प्रेम०—अच्छी बात है। तो तुम बहू से रानी की बातें जता चुके हो क्या?

सुरेश—भला अब उससे पर्दा क्या—जब वह मुझसे किसी बात का पर्दा नहीं रखती। मेरे क़दमों को आँसुओं से धो-धोकर अपनी सारी सर-बीतियाँ वह उड़ेल बैठी—दिल के कच्चे चिट्ठे भी खोलकर रख दिये। दूध की धोई है वह, करुणा की जीती-जागती प्रतिमा....मगर हाँ पिता जी, अभी याद आई, *(सुरेश का रुख बदलता है)* जैसी भी हो वह—आपने मेरे सर पर एक ही नहीं, दो-दो बलायें लाद दीं; यही टीस, यही कसक तो मुझे खाये जा रही है तिल-तिल।

प्रेम०—यह क्या ले उठे तुम? कहाँ तो कह गये कि दूध की धोई ठहरी बिचारी—गंगा की धारा-सी धवल, जिसे नाबदान की मैल भी गंदी करने से रही..... तुम उठे उसके आँसू में अपने आँसू घोलने......

सुरेश—सो वो ठीक है—मगर उसके लहू में उस शैतान ने अपना लहू जो घोल रखा है। कहीं उस लहू की सिंचाई की फसल हमारे सर आई तो लीजिये—कहीं के न रहे हम।

प्रेम०—अरे, उस लहू के घूँट को पीकर शर्बत का घूँट बना देना कोई बात नहीं। मगर, क्या सचमुच वह अपने अन्दर कोई नया अंकुर साथ लिये...

सुरेश—जी, अन्देशा तो ऐसा ही नज़र आता है—यह बात और है कि अभी उसे भी वैसा पता नहीं।

प्रेम०—जो हो, नाम न लो—हमारी शराफत तो यही ठहरी कि जिसे उठा लिया, उसे उठा लिया—फिर उतारना क्या?

सुरेश—खैर, देखा जायगा...क्या जाने, कलेजे पर पत्थर रख कर उसे लाहौर ही भेजना पड़ा।......देखिये, रानी पर कैसी क्या प्रतिक्रिया होती है—उसी पर सब कुछ निर्भर है।......आप रानी से अभी मिले नहीं—कल ही इतमिनान दे देना रहा उसे।

प्रेम०—कहाँ मिले—कोई है भी यहाँ ?

सुरेश—वह दीनू तो जरूर होगा। गई होगी रानी स्कूल या पार्क—और कहाँ जायगी भला ?

प्रेम०—नहीं-नहीं, वह तो कहीं जा चुकी शायद...

(दीनू का प्रवेश)

दीनू—अच्छा, सुरेशजी भी आ गये—क्या खूब ! 'फसलेगुल जब जा चुकी, अब्रे बहार आया तो क्या।'

सुरेश—यह क्या कह रहे हो तुम ?

दीनू—कुछ तो नहीं—वही ग्रामोफोन का गाना है। याद है न—आपने ही मुझे...

सुरेश—अच्छा-अच्छा, यह कहो—कहाँ रही हमारी रानी....

दीनू—लीजिये, वह चिड़िया तो उड़ गई—फुर्र।

सुरेश—यह लो, लगे हमीं से.......

दीनू—बाज़ ने झपट्टा मारा—उसे चंगुल में थाम उड़ा ले गया।

सुरेश—कहाँ ले गया—कहो न.......

दीनू—कहाँ कहूँ—क्या जाने जन्नत, क्या जाने जहन्नुम।

सुरेश—अरे, उड़ा ले गया कौन—यह क्या तमाशा खड़ा कर रखा है भला ?

दीनू—उहूँ-उहूँ। *(वह अपनी होठों पर उँगली रख देता है—और सिर हिलाता है।)*

सुरेश—भला दीनू, आज यह क्या रवैया है तुम्हारा—क्या थे, क्या हो रहे हो आज !

दीनू—बाबू जी, हवा जो पलट गई—मेरे बस की बात होती तो मैं कभी ऐसा अँधेर...... जाने दीजिये.......

सुरेश—मगर तुम लाख पर्दा दो हम तो जान कर रहेंगे आखिर...हाँ आज की तुम्हारी यह नई चाल-ढाल...

दीनू—अच्छा, तो जरा इधर आइये......सुन ही लीजिये *(कान में गुप-चुप कहता है।)*

सुरेश—*(चौंक कर—तड़प कर)* अरे युसुफ— वह शैतान डाका दे गया यहाँ भी ?

(ज़फर का प्रवेश)

ज़फर—भला कौन शैतान है—कौन भगवान ! आपने उसकी

पसन्द की चीज़ कम्पा मार लूट ली—उसने आपकी···डाँका कैसा—उधर पाया, इधर खोया। Exchange is no robbery—ठठेरे-ठठेरे बदलैया, है न? (ठहाका मार कर हँसता है)

प्रेम०—अरे, तुम्हीं न थे उस दिन—क्या-क्या रंग बाँधा।

जफ़र—जी, बंदा भी एक उमीदवार था ज़रूर, मगर जब आपके साहबज़ादे ने बढ़ाकर हाथ छलकते प्याले को थाम लिया तो फिर लीजिये—'बढ़ा कर हाथ जो ले ले यहाँ मीना उसीका है।'

प्रेम०—वो फिर यहाँ कैसे?

जफ़र—कैसे क्या? जैसे वहाँ, वैसे यहाँ।

प्रेम०—हाँ जी, तुम्हारा नाम तो जोज़ेफ है न?

जफ़र—भला नाम में क्या लाल जड़े हैं—जोज़ेफ, जफ़र या और कुछ······हाँ भई दीनू, इन सब कमरों को बन्द कर ताला लगा देना—कुंजी दिये जाना मुझे।

सुरेश—सुन लिया न, जान लिया न, पिताजी! क्या चाल थी—सधी-बदी। यह जोज़ेफ नहीं—जफ़र है, जफ़र। उसी युसुफ के सरोद का तबलची।·· आसमान साफ हो रहा है—लीजिये।

प्रेम०—जाने दो, एक दिन तो आसमान फटेगा ही उसके सर पर—

'जो चुप रहेगी ज़बाने खंजर,
लहू पुकारेगा आस्तीं का।'

जफ़र—अजी, हमारी ठोकर पर तो आसमान है—ज़माना भी। हमारे युसुफ सरदार कुछ ऐसे-वैसे शिकारी नहीं—कभी जो उनका निशाना चूकता हो। लीजिए, बेला तो बेला, आपकी रानी भी बैठे-बिठाये शिकार हो गई। रह गये आप टका-सा मुँह लिये। अब भिजवायें ··खुशी से भिजवायें—जेल भिजवाने उठे थे न आप····क्या हाथ आया—मुँह की खाई बस। अच्छा जी, बन्दा चला—आदाबर्ज़!

(जफ़र का प्रस्थान)

सुरेश—लीजिये पिताजी, कहीं के न रहे हम। आपने अपनी आन देखी, उस आन की चुनौती भी—मेरी ज़बान नहीं, मेरी जान नहीं।

प्रेम०—क्यों भूलते हो, बेला की दर्दभरी तस्वीर जो मेरे सामने थी।

सुरेश—रही होगी—मैं तो लुट गया बैठे-बिठाये।

(दीनू झपट कर सामने आता है।)

दीनू—भले याद आई—यह लीजिये अपनी अंगूठी और लाइये वापस कीजिये उनकी तस्वीर—चिट्ठियाँ भी....

सुरेश—अच्छा, ये दिन आ गये आज! और, यह है वह रानी—यह रुख, यह तान तेवर! जो एक दिन हथेली पर दिल लिये, आँखें बिछाये रहती मेरे सामने, वह आज तोते की तरह आँखें फेर लेती हैं। सच है, नारी के पास समझौता कहाँ—वह तो शोला है या बर्फ, मोम है या पत्थर। अच्छा ले, दम धर, देख तो भई, कहाँ रखी हैं सारी चीजें।...हैं! वह हैन्डबैग किधर रह गया—साथ लिये आया था न यहाँ......

(अजब परीशान हालत में इधर-उधर देखता है, ढूँढ़ता है—उसी खोज में परीशान बाहर निकल जाता है।)

प्रेम०—हाँ भई दीनू, वह सामने धर्मशाला जो है न—दौड़ जाओ कमरा न० १०...हमारी बहू होगी—बेला, उसे लिये आओ चटपट......यह पुर्जा भी उसे दे देना—लो यह अठन्नी, देर नहीं।

(दीनू के हाथ में अठन्नी देते हैं। दीनू का प्रस्थान)

[सुरेश वापस आता है—हैन्डबैग लिये। वैसे ही परीशान सामने कुर्सी पर बैठकर लगता है हैन्डबैग की चीजें उलट-पुलटकर इधर-उधर बिखेरने]

प्रेम०—(नजदीक आकर) भला सुरेश! अब यों सिर धुनने से आता-जाता ही क्या है? जो हुआ—हुआ। तुम्हारी रानी तो जा चुकी, अच्छा होता उसे दिल से भी जाने

देते—समझे। वियोग में दुख है, त्याग में सुख—हाँ, मुझसे कहीं भेंट हुई रहती तो शायद.......

(सुरेश झटपट उठ खड़ा होता है, पिताजी की ओर रुख कर एक अजब आवेश में गुर्रा कर कहता है)

सुरेश—भला आपको ऐसी पड़ी क्या थी कि वक़्त पर पहुँच पाते—गया क्या आप का ? लीजिये, मिल गया उधर युसुफ को नादिर मौका। अजब नहीं, अपनी ओर से नमक-मिर्च लगा कर उसके कान भर दिये—हमारी शादी की चुनौती ही क्या कम थी ? और, फिर क्या ? अपनी मुट्ठी में उसे फाँस लिया होगा—जैसी भोली-भाली ठहरी वह। तो कहा न, आप को तो अपनी आन रखनी थी—आन। इधर लीजिये, हमारी जान पर आ गई।

(सुरेश पागल-सा टूट कर गिरा चाहता है)

ओफ़ ! अब क्या करूँ ! कहाँ—कहाँ रानी का पता पाऊँ—मुझ पर कैसे क्या गुजरा, उसे रत्ती-रत्ती जता दूँ। ओफ़ ! बेटे का सबसे बड़ा दुश्मन उसका बाप ही ठहरा—दूसरा नहीं।

(सुरेश बदहवास गिरना चाहता है—चेहरा उड़ गया है, आँखें खिच आई हैं—पिता चाहते हैं उसके कंधे पर हाथ रख दिलासा देना, मगर वह हाथ झटक देता है।)

नहीं-नहीं, अब जान रख कर क्या होगा ? अपनी सन्तान, अपना बेटा खोया—आपके रहते, आपके चलते......क्या जाने एक पराया......एक शैतान की सन्तान गले पड़ी।

(वह छाती में मुक्का मारता है—सर पीटता है)

प्रेम०—*(चौंक कर)* तो क्या तुम्हारी रानी भी .....

सुरेश—जी, वह भी लगी थी दिन गिनने—हाँ।

प्रेम०—तो फिर तुम्हारा गया क्या ? उधर खोया इधर पाया। तुम्हें तो अपने नाम का एक वाहक ही चाहिए न।

सुरेश—*(गुर्रा कर टूटता है जैसे)* फिर वही जली-कटी... आये हैं जले पर नमक छिड़कने—नमक। ऐसी अपनी आन ठहरी—बेटे की जान गई तो गई...

(बेला का प्रवेश)

बेला—नहीं-नहीं, जिम्मेवार तो मैं ठहरी, पिताजी नहीं—लीजिए, अभी जान दिये देती हूँ। न रहेगा बाँस न बाजेगी बाँसुरी—फिर कोई बला आपके सिर आने से रही। मुझे जीने की चाह नहीं, भूख नहीं, मोह नहीं—आप जियें—फूलें-फलें, मैं सर पर सिन्दूर लिये उठ जाऊँ—मेरा बेड़ा पार है, बस !

(बेला आँचल के अन्दर से एक छुरा निकाल लेती है—चाहती है जैसे अपनी छाती में भोंक लेना। सुरेश दौड़ कर सामने आता है—उसका हाथ थाम लेता है।)

सुरेश—तुम......तुम जान दोगी.......नहीं नहीं, तुम क्यों? तुम तो दूध की धोई ठहरी। यह छुरी—यह चोट तो तुम पर ही नहीं; मुझ पर—मुझी पर......हैं-हैं यह क्या..

(वह हाथ छुड़ाकर छुरी अपनी छाती तक ले जाती है—दोनों ओर से पिता और पुत्र झपट कर छुरी थाम लेते हैं।)

[पर्दा गिरता है]

द्वितीय अङ्क

प्रथम दृश्य

[मकान का चौड़ा बरामदा है—प्रेमनाथ जी की तस्वीर सामने दीवार पर टंगी हुई है। बरामदे में एकाध कुरसी-मेज़ हैं—दरी भी बिछी हुई है, दरी पर तीन औरतें बैठी हुई बधाई गा रही हैं—एक उठ कर नाच भी लेती है]

बधाई-गीत

लो, कुल उजियार, ललन—जीओ, युग जी ओ
गोदी भराइल हिय हुलसाइल
अंगन उजियार, ललन—जी ओ युग जी ओ
आई वहरिया लहरे लहरिया
चमन गुलजार, ललन—जी ओ युग जी ओ
मंगल गावें, गाई सुनावें
रतन नेवछार, ललन—जी ओ, युग जी ओ।

(बैग हाथ में लिये सुरेश का प्रवेश)

सुरेश—(चौंक कर) हैं, यह क्या रवैया है यहाँ ?

एक औरत—अच्छा, आ गये आप—आपका ही तो इन्तजार रहा।

सुरेश—बस, आ ही रहा हूँ अभी—मगर यह हंगामा क्या खड़ा कर रखा है यहाँ ?

एक औरत—बधाई है, बधाई—शाबाशी भी—बेटा मुबारिक !

सुरेश—बेटा—कैसा बेटा ?

एक औरत—लो सुनो, बड़े आये हैं हवा बताने—जी ! बाप का दर्जा न पायें बे-जोड़...........

दूसरी औरत—शर्मा रहे हैं हज़रत—है न ?

पहली औरत—उहूँ-उहूँ, जेब की तलाशी जो देनी ठहरी आज !

दूसरी औरत—भई, आज तो दोनों हाथों लुटाने का दिन है—शर्म या लेहाज़ क्या !

तीसरी औरत—अजी दिल उठे, तभी न हाथ भी उठे।

सुरेश—अच्छा-अच्छा, तुम तो उठो·········उठो·······उठती हो या·········

पहली औरत—तो खाली हाथ तो हम उठने से रहीं—चाहे कुछ हो—जूतियाँ ही क्यों न बरसें सर पर।

दूसरी औरत—अजी भाग कहो लाला—भाग ! ऐसी मिली कि साल भी न गये होंगे और वंश उजागर कर बैठी।

सुरेश—जाती हो भले-भले·········

(वह दाँत पीस कर झपटता है। करीब था कि उनकी गर्दन में हाथ दे बैठता कि पिता जी आ जाते हैं।)

प्रेम०—हैं-हैं, यह क्या—छोड़ो-छोड़ो भी उनको······अरे भई, उस बेला आना—लिये जाना अपनी बकसीस हम से·· क्यों नाहक़······

पहली औरत—अच्छा जो—जैसी मर्ज़ी !

(वे उठकर बाहर जाती हैं।)

प्रेम०—अभी आ रहे हो क्या सुरेश—बड़ी देर की आखिर।

सुरेश—जी, क्या करता, इमतिहान जो था सर पर।

प्रेम०—अजी इमतिहान तो तुम्हारा आज शुरू होता है—आज।

सुरेश—आज शुरू होता है ! कैसा इमतिहान ?

प्रेम०—यही असली इमतिहान ठहरा—तुम्हारी शिष्टता, तुम्हारी मानवता की जाँच। आखिर वह शिक्षा भी क्या जो तुम्हारी बुद्धि को ही कुरेद कर रह गई—हृदय की अनुभूतियों को उभार न पाई, समझे।

सुरेश—जी, समझ रहा हूँ आप के इशारे·······*(कुछ सोच कर)* भला पिताजी, दुनियाँ जाने या न जाने पर हम-आप तो जान रहे हैं कि यह खुशी, खुशी नहीं—अपनी गर्दन पर छुरी फिर रही है जैसे। रह-रह कर कलेजे में एक टीस भी उठती है कि अपना तो खोया—यह पराया पाया—जाने मेरे किस गुनाह की सज़ा है यह। सच मानिये आप का लेहाज न होता तो अब तक··

प्रेम०—बच्चे का गला घोंट दिये रहता—यही न ? छिः, शर्म नहीं आती। एक दिन बच्चे की माँ भी तुम्हारी आँखों में कैसी चुभती रही, भूल गये—पराये हाथों लुटी जो थी बिचारी, मगर आज ? तुम्हारी नज़र में उसकी कीमत क्या वही रही ?—कैसी अपनी हो रही है वह !

सुरेश—जी, बहू को पाकर तो मैं रानी के खोने की टीस भी भूल बैठा। बात भी है—उसकी बुनियाद जो खरी ठहरी—भले कुल की लड़की—ऊँचे घराने की बू-बास। मगर यह बच्चा तो अपनी माँ के सुहाग और अनुराग की देन नहीं। उस पर ज़ुल्म का एक दर्दनाक अंजाम ठहरा जो आज यह रूप लेकर नमूदार हुआ…उस बिचारी का तो कोई हाथ नहीं—बस, सहना रहा बेबस, लहू का घूंट पीना—क्या तब, क्या अब। माँ के आँचल के दूध से भी तो वह विष विलीन होने से रहा। करेला-करेला ही रहेगा—कड़वा, वह अंगूर की डली पर भी बढ़े तो क्या !…तो फिर यह कब अपना होने को है भला। आखि़र—

'बायस पालिय अति अनुरागा।
होंहि निरामिष कबहूँ कि कागा॥'

प्रेम०—अजी यह बायस नहीं, मनुष्य है—वही जो हम या तुम हो। प्रकृति के कोष से तो सभी बराबर आते हैं, समझे। अब तुम इसे अपना मान, अपनी संस्कृति के साये में इसका पालन-पोषण करो तो हो सकता है यह सयाना हो कर हमारे कुल का तिलक हो—कलंक नहीं।

सुरेश—आप की भी कैसी बातें हैं पिताजी ! वह मुसलमान तो मुसलमान…एक शोहदे शैतान की सन्तान जो है।

प्रेम०—अजी वह सन्तान….औलाद तो कुदरत की है….प्रकृति की देन—वह प्रकृति जिसके हाथों कोई मर्द या मादा चाहे जो आये मगर भला या बुरा नहीं, कुलीन या हीन नहीं, द्विज या शुद्र नहीं—और हाँ राजा या रैयत भी नहीं एक ही सत्ता घट-घट में व्याप्त है बस। हाँ, हमारे

यहाँ आकर वह जिस रंग में आये. जिस कुल, समाज या धर्म के गले पड़े या जिस हवा-पानी में बले और फिर वह उठे या गिरे—जिम्मेवार वह ।

सुरेश—*(अवाक होकर देखता है)* ।

प्रेम०—तो बड़ा या छोटा, भला या कमीना कोई पैदा नहीं होता, —वह यह या वह होता है अपनी चाल से—अपने संग से, अपने ढंग से । रहा अपना-पराया तो यह सारी बातें तो हमारे यहाँ के मैं और तू की देन ठहरीं । और जब तक हमारी आँखों पर यह दुई का पर्दा है--कोई अपना दिखता है, कोई पराया—नहीं तो 'का तव कान्ता कस्ते पुत्रः'—कौन अपनी जोरू और कौन अपना बेटा ...... तुम नहीं जानते, न जानो—पर यह मानी हुई बात है कि यह सारा तमाशा तो अपनापन की माया ठहरा—माया ।

सुरेश—मगर, कोई जो बरी नहीं—यह दौर तो दुनियाँ के अन्दर बराबर रह आया है और रहेगा । अब आप ही कहें, ऐसी दुनियाँ को क्या करे कोई—चारा ?

प्रेम०—बस जान ले, पहचान ले—भरसक इसके चक़मे में न आये । देखो न, आज जाति-भेद रंग भेद लेकर कदम-कदम पर कैसे काँटे बिछ गये हैं—कोई हद है ? बड़ी वैसी है यह भेद-नीति । उस दिन राय साहब के घर चाय की पार्टी थी । बेटे के हाथ से चाय की एक प्याली छूट कर टेबुल से लुढ़क पड़ी—टूट गई । बाप के चेहरे पर एक झिझक-सी उठी, बस । मगर कुछ परवाह नहीं बात आई-गई हो गई । पार्टी खत्म हुई, नौकर आया सब सामान सरकाने । सरकाते वक़्त एक सेट मेज़ के दराज़ से टकराती है—कोने पर एक चीस-सी उठ आती है और लो नौकर के मुँह पर एक चाँटा दे बैठते हैं मालिक । हम दंग हैं, भूल दोनों ही से होती है....किससे नहीं होती, मगर बेटे की भूल पर पेशानी पर बल तक नहीं और, नौकर की ज़रा-सी भूल पर ऐसा गुस्सा...क्यों ?

सुरेश—जी, यही तो दुनियाँ है। जो भी आया इसी का होकर रहा। अपने घर एक पत्ता खरकता है तो हम सर पर आसमान उठा लेते हैं, उधर एक पड़ोसी के सर पर आसमान भी फटे तो लीजिए हमारे कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती। कैसे रेंगे—अपना गया क्या? यह अपनापन की ग्रन्थि तो खुलने से रही.......

प्रेम०—भला यह कैसे हो सकता है कि सभी ऐसे बे-दर्द हों। यह मानव का धरातल नहीं, उसका रसावल है—रसातल, उसकी प्रकृति की विकृति, समझे। माना कि आज की दुनियाँ में यह दौर भरपूर है। आज तो यह अपनापन का मोह—यह अपना बेटा, अपनी जायदाद, अपनी जाति, अपना धर्म, अपनी ज़बान, अपना वाद—एक-एक आफत का परकाला हो रहा है और लो, सबसे ज़ोरदार है यह अपनी बोली की ममता की धुंध। उस एक अनन्त—अविनाशी का भी बँटवारा हो गया हमारे यहाँ—इधर अपना राम, उधर अपना अल्लाह....... हद भी है इस अंधेर की! तो समझे भई, कैसी क्या बला है यह अपनापन की धाँधली। लो, तुम्हें एक किस्सा सुनाये देता हूँ।

सुरेश—जी, कहिये।

प्रेम०—कोई एक बनिया रहा किसी गाँव में—बरसों दुकान खोले रहा तो क्या, कुछ वैसा कमा न पाया बिचारा। एक दिन जाने कैसे क्या बात हुई, वह एकाएक घर-बार छोड़ जानें किधर चला गया। जाने के पहले उसकी घरनी गर्भिणी हो चुकी थी—उसको वैसा पता न था। साल पर साल जाते रहे—कोई टोह नहीं मिलो। लड़का जब सयाना हुआ तो उसे बाप की खोज-खबर लेने की पड़ी और माँ से परिचय का एक पत्र लेकर बाप की तलाश में निकल पड़ा।

सुरेश—मगर बाप की हुलिया का तो उसे पता न था। कहाँ ढूँढ़ता—किसे?

प्रेम०—उसकी माँ ने सब कुछ जता दिया—कोई पुराना फोटो भी दिखा दिया उसे। चलते-चलते पहाड़ों की तराई में जा पहुँचा। रात ढल चली थी—घुप अँधेरा, सन्नाटा—ठंढ भी बेजोड़। तभी दिये की एक झिलमिलाती लौ-सी नजर आई—किसी बिसाती की दुकान। उसने वहीं रात बिताने की जगह माँगी, मगर साफ इन्कार पा गया—किवाड़ के पल्ले झटके से बन्द कर दिये दुकानदार ने। बेचारा कहीं पनाह न पाकर एक पेड़ के नीचे थका-माँदा गिर पड़ा—और ऐसा गिरा कि फिर उठते न बना।

सुरेश—तो वह सदा के लिए उठ गया क्या?

प्रेम०—जी, एक तो ठंढ, दूसरे थकान—परीशानी—चल बसा बिचारा। सुबह बिसाती की नज़र जो पड़ी तो उसे खटका कि जानें क्या बला आये सर पर—बस चाहा कि घसीट कर पास की नदी में डाल दें। लगा जेब टटोलने कि कहीं कुछ हाथ आजाय तो मुज़ायका क्या, मगर उस एक पत्र के सिवा कुछ हाथ न आया। पत्र पर नज़र जो गई तो छाती में मुक्का मार रो पड़ा—हाय! अपना बेटा!...तो समझे लाला! जब तक वह अपना न दिखा था कौड़ी का तीन था—मरे या जिये, बला से। जब अपना नज़र आया तो दर्द का दरिया उमड़ आया उसी पल। तो देख लिया न, कहाँ कोई कितने में रहता, कहाँ वह रह जाता है इतने में—ऐसी बे-जोड़ है यह अपनापन की तंगी। लो, बस तुम भी इसी धुंध, इसी भूल-भुलैया में......

सुरेश—मगर, पिता जी, मेरा जी तो भरा नहीं—मेरे प्रश्न का समाधान नहीं यह। मैं तो जानना चाहता हूँ कि माँ-बाप के लहू का असर कैसा है—कितना......

प्रेम०—बराय नाम! वह भी स्थूल पर, कुछ सूक्ष्म पर नहीं। अगर लहू का असर कोई तथ्य रखता तो फिर एक ही माँ-बाप के लड़के एक ही हवा-पानी में पलकर भी एक दूसरे से मीलों दूर सरक जाते हैं, क्यों?—कोई कुछ होता है, कोई कुछ। क्या बात है कि अक्सर पंडित

का पुत्र मूर्ख है और मूर्ख का पंडित......अपने ही पड़ोस में धनी-मानी शम्भू पंडित के पुत्रों का रवैया देख लो—कोई कहाँ है, कोई कहाँ।

सुरेश—तो फिर क्या रहस्य है आखिर—मैं समझ नहीं पाता हूँ।

प्रेम०—सुनो भई, लहू का कोई मोल नहीं—माँ के आँचल का दूध भी कोई तथ्य नहीं। माता-पिता से बाहरी रूप-रेखा में एकाध छींटे कोई जो पाये, मगर अन्दर की निधियों में एक छदाम नहीं। कहा न, जो कुछ असर है वह शरीर पर है—अन्दर नहीं। मानी हुई बात है कि हर कोई अपने पूर्व जन्म के कर्मों और संस्कारों के संचय से अपनी नई जिन्दगी की झोली भर कर इस धरातल पर आता है। हाँ जिस वातावरण में वह अँकुर पनपता है, फूलता-फलता है—उसका असर एक हद तक अवश्य है, जो उसे दांये मोड़ दे या बांये।

सुरेश—तो फिर मनुष्य अपने कर्म-प्रवाह पर तिनके की तरह बहा जा रहा है—कोई चारा नहीं?

प्रेम०—है क्यों नहीं—बहुत कुछ है, मगर वह अपने को जान पाये, जगा पाये तब न। परिस्थितियाँ हमारे हाथ में चाहे न हों पर अपनी प्रवृत्तियों पर शासन तो हमारी लगन और मनन, हमारी हिम्मत और हुनर पर बहुत-कुछ निर्भर है। आखिर, आदमी के अन्दर देव और दानव दोनों ही ठहरे—अब जिसकी सुने, जाने वह। यह बात और है कि कभी यह दून पर है, कभी वह।

सुरेश—मगर, हमारे अन्दर कब कौन बोल रहा है, इसकी पहचान?

प्रेम०—कोई मुश्किल नहीं। अपनी अनुभूति की जबान के तले कोई दूसरी जबान नहीं होती। हमारी आत्मा तो स्पष्ट कह रही कि यह बच्चा तो दूध का धोया ठहरा—कोई धब्बा नहीं। इसे अपनाने में, इसे उठाने में ही हमारी आन, हमारी पहचान भी है।

सुरेश—अच्छी बात है—जैसी मर्जी। आपका पौत्र फूले-फले आपकी देख-रेख में। एक दिन आप ही खुल जायग

कि क्या रंग ले रहा है वह—नस्ल हावी है उस पर या आप के चलते वह हावी होता है नस्ल पर।

प्रेम०—फिर वही नस्ल और गोत्र की धुंध ? हिन्दू तो इसी नस्ल और गोत्र, इसी ऊँच-नीच और छूत-अछूत के पीछे क्या-क्या न खोते आये निरन्तर। और लो, उधर क्रिस्तान और इस्लाम के घर जो भी आये, जैसे भी आये वह सिर-आँखों पर है उनकी। तो, किसकी जीत रही आखिर—तुम्हारी या उनकी ? और, अब भी आँखें न खुलीं यह छुई-मुई की रीत बनी रही, तो देख लेना अभी क्या हुआ है, जो आगे होगा इस तँग नज़री का अँजाम।

सुरेश—तो आप समझते हैं कि जो भी आये, किसी भी नस्ल का, आपकी सुहबत में आकर उसकी काया पलट कर रहेगी ?

प्रेम०—तुम्हें विश्वास नहीं ? मैं कह रहा हूँ, तुम किसी एक आदिवासी के बच्चे को अपने यहाँ की खुली हवा और खुली रोशनी में रख कर देख लो। जो एक गये-गुज़रे में शुमार हैं आज, वह दो दिन में तुम्हारी पाँति में पैर रोप पाता है या नहीं। आखिर तो वह वही ठहरा जो हम हैं या तुम—एक मनुष्य। और उसके अन्दर भी तो वही चैतन्य है, वही ब्रह्म—तो फिर क्या ऐसी मंजिल है जो उसकी सत्ता के परे हो ! भूल गये एकलव्य की कथा। लो, बस यकीन मानो, यह बच्चा तो तुमसे बीस ही आयेगा—उन्नीस नहीं। यह जिम्मेवारी मेरी रही, तुम्हारी नहीं। हाँ, मैंने रनवीर नाम दे रखा है—जान लो।...हाँ भई, रानी का कुछ पता चला...

सुरेश—क्या जाने पिता जी, रानी तो अब युसुफ की हो चुकी—उसकी बीबी, मुझे क्या ? उस भूली हुई दुनियाँ में अब साँस लेने से फ़ायदा ! वह नशा तो उतर गया—खुमार भी बाक़ी नहीं शायद।

प्रेम०—अच्छा ही हुआ—सुरा गई, सुधा आई।

(मुकुल का प्रवेश)

मुकुल—अरे ! तुम यहाँ हो—उधर दरवाज़े पर पुलिस खड़ी है, पूछ रही है कि सुरेशजी अन्दर हैं।

प्रेम०—हैं ! यहाँ क्या ?····आज यह नई बात ?

सुरेश—कोई बात नहीं, हमारे एक-एक क़दम के पीछे आज पुलिस चलती है—चले। क्या जाने आज आई हो मुझे जेल की सैर कराने।

प्रेम०—मगर तुमने कब किसी का क्या बिगाड़ा है कि पुलिस यों हाथ धो तुम्हारे पीछे पड़ी है ?

सुरेश—पिता जी, आज देश का आन्दोलन एक नये मोड़ पर है—नई दिशा, नई चेतना। वह आराम-कुर्सी वाली लीडरी, वह जबानी भकारे-बाज़ी के दिन गये। गांधी जी ने आकर नई रूह फूँक दी है—ज़माने की नब्ज़ पर भी उँगली है उनकी। लीजिए, उनका नाम हवा में तैर गया—क्या पंजाब, और क्या मद्रास। मैंने भी हवा का रुख देख कर अपनी नाव पर पाल बदल दी है ! कांग्रेस के झण्डे के साये में जा चुके हम—हो जो हो। और जेल तो अब जेल नहीं—हमारी आज़ादी की पहली मंजिल है आज।

मुकुल—तो पुलिस आई है तुम्हारे परिछन के लिए। खूब ! जेल जाना तो ससुराल जाना है आज।

(पुलिस इन्स्पेक्टर का प्रवेश—दो सिपाही भी साथ हैं)

प्रेम०—*(पुलिस इन्स्पेक्टर की ओर रुख कर के)* आइये-आइये—कहिए, जामा-जोड़ा लाये हैं साथ...?

पु० इ०—जी, बारन्ट गिरफ्तारी है—सुरेशजी तैयार हैं न ?

सुरेश—जी, आपही का तो इन्तजार है। लाइये, कहाँ रही आपकी फूलमाला।

पुलिस इन्सपेक्टर—यह क्या है।

(सुरेश के हाथ मे हथकड़ी पहना देता है)

सुरेश—*(पिता की ओर मुड़कर)* तो आपका आशिर्वाद है न पिताजो ?

प्रेम०—जरूर, इसमें पूछना क्या ? आज तो जो देश के लिए सर पर कफन बाँधता है उसी के सर सेहरा है निरन्तर।

द्वितीय अंक

द्वितीय दृश्य

(पार्क में दो बुर्के वाली औरतों का प्रवेश—एक की गोद में छोटा-सा बच्चा है, नौकर भी साथ है, पीछे-पीछे आ रहा है। एक बुर्के वाली पास के बेंच पर बैठ जाती है—दूसरी मुड़कर उसे टोक बैठती है।)

दू० बु०—ऐलो! तुम यहाँ बैठ रही - दरगाह चलना है न?

प० बु०—जाने कैसा जी कर रहा है आज—माफ करना।

दू० बु०—लो, ऐसे फिकरे किसी और को देना—सीधी-सी एक बात क्यों नहीं कह देती कि दरगाह जाने में जी बैठा जा रहा है। माना कि अपनी खुशी तुम इस्लाम के दर पर नहीं आई मगर जैसे भी सही, जब आ चुकी तो फिर मुँह चुराना क्या?

प० बु०—भला बड़ी बी, मैंने क्या कोई बात उठा रखी—क्या नमाज़, क्या रोजा! और दरगाह की जयारत तो सिर-आँखों से...

दूसरी—लो, अब बातें न बनाओ, भले-भले नन्हे को लिये रहो...अभी आई मैं...अच्छा छोटे मियाँ, अम्मी जान की गोद में खेलना। *(नौकर की ओर मुड़कर)* किसी टांगे वाले को पुकारो न, खड़े क्या हो?

(वह बच्चे को साथ वाली औरत की गोद में दे देती है)

अच्छा, छोटी बी, खुदा हाफिज़!

(वह जाती है)

(बेंच से उठकर बुर्का वाली पार्क के गमलों, पेड़ पौधों को बड़ी हसरत से देखती है—अनायास उसकी जबान खुल पड़ती है)

लो, वही समां है, वही पार्क, फूल-पत्ते...वही सब कुछ...हाय! मैं ही न रही वह...वह भी न रहा अपना।

(वह आकर बेंच पर बैठ जाती है, चारों ओर सुन सान पाकर लगती है गुन गुनाने)

"वह जो हम में तुम में करार था,
तुम्हें याद हो कि न याद हो;
वही पक्का वादा निवाह का
तुम्हें याद हो कि न याद हो।
वह जो प्यार मुझ से था पेश्तर
वह करम जो था मेरे हाल पर
मुझे सब है याद ज़रा ज़रा,
तुम्हें याद हो कि न याद हो।
कभी हम में तुम में भी चाह थी,
कभी हम से तुम से भी राह थी;
कभी हम भी तुम भी थे आशना,
तुम्हें याद हो कि न याद हो।"

(सुरेश का प्रवेश। आवाज पर कान खड़े होते हैं, वह उधर मुड़ता है, बैठ जाता है पास के बेंच पर—कभी बुर्का वाली को देखता है और कभी गोद के बच्चे को। आँखों से आँखें मिलती हैं—वह आँखें फाड़ देखता रहता है एक टक..हठात् बुर्के वाली सरक कर नज़दीक आती है।)

बु० —हाय! तुम्हारी आँखों में पहचान तक नहीं...लो, यह दिन भी आ गये आज...

सुरेश—(चौंक कर) कौन! रानी?

बु० —रानी! कहाँ की रानी?

सुरेश—(आवेश में) वही...वही रानी...हमारी! और कहाँ की!

बु० —तुम्हारी! भला कहाँ मैं और कहाँ तुम्हारी वह रानी!... पगले, वह रानी तो कभी की मर चुकी, दफन हो चुकी... कोई ढाई साल होने को आये—यह तो रज़िया बोल रही है रजिया...युसुफ की बीबी...

सुरेश—नहीं-नहीं, तुम वो वही हो, वही रानी, नाम और रूप चाहे कुछ हो आज।

रानी—(विक्षिप्त-सी) वही रानी! क्या तब की··क्या यह अब की! (चेहरे पर से पल भर बुर्का सरका लेती है) देखो

वो, रह पाई हूँ मैं वह आज ? है वह अपनी शक्ल··· अपनी जिन्दगी ? वह अपनी खुशी, अपने दिन, अपनी रातें···अपने आँसू तक···रहा ही क्या अपना ? कुछ तो नहीं। *(सर झुका कर)* अब क्या दिन फिरेंगे ? आज उन गड़े मुर्दों को उखाड़ने से फायदा ? एक दिन तुम मेरे क्या थे और मैं तुम्हारी क्या थी··· अब उस बुझी हुई राख को कुरेद-कुरेद कर आता-जाता ही क्या है ? *(ठहर कर, सोच कर)* लो, यह दिन भी आना था, यह कयामत का दिन···आकर ही रहा आखिर।

सुरेश—अच्छा ! तुम तो बम्बई में रह रही हो न····अपने मियाँ के साथ।

रानी—अजी, जब थी, तब थी। वह बात तो आई गई हो गई। आज तो—'चमन उड़ गया आँधियाँ आते-आते।'

सुरेश—यह क्या कह रही हो तुम !

रानी—यही कि तुमसे गई, जिन्दगी से गई। जान के लाले पड़े हैं—लाले।

सुरेश—भला रानी, ऐसा भी जी मसोस लेता है कोई !

रानी—जाने दो, ज़िन्दगी से तो खैर हाथ धो ही चुकी, अब मौत भी सलाम लेने को रवादार नहीं।

सुरेश—नहीं-नहीं, जी छोटा न करो, यही दुनियाँ है, यही रवैया। आदमी चाहता है कुछ और होकर रहता है कुछ।

रानी—फिर भी ऐसा ! क्या थी, कैसी थी और क्या हो रही हूँ आज ! वह बिजली गिरी कि पाँव तले की अपनी धरती तक उलट गई।·····बाप रे ! अदृष्ट का यह निष्ठुर अट्टहास··नहीं-नहीं, आघात कहो—आघात। इतिहास से ही न पूछो कि कभी फटा है आसमान किसी के सर पर ऐसा।

सुरेश—यह न कहो, क्या-क्या मुरादें लिये आते हैं हम यहाँ—और क्या-क्या मुरादें—क्या-क्या सूराखें लिये जाते हैं यहाँ से····बस,···'होइहिं सोइ जो राम रचि राखा।' ···हाँ तुम तो कहोगी—'होता है वही जो मंजूरे खुदा होता है।'

रानी—खुदा ! हुँह खुदा !—राम कह कर क्या पाया कि खुदा कह कर पाऊँगी मैं···नहीं-नहीं, पा रही हूँ मैं। बस, वही तमाशा है, वही झाँसा—क्या काशी और क्या काबा ! *(वह सर झुका लेती है आँखों में उमड़े हुए आँसू रूमाल से साफ करती है--फिर सर उठाती है)* हाँ जी, तुम तो जेल में न थे···कब छूट कर आये ?

सुरेश—जी, दो साल रहे। कल ही तो खुली हवा में कदम रख पाये।

रानी—लो, तुम मेरे न हो सके—मेरी तक़दीर, मगर तुम अपनी एक जीती-जागती यादगार जो मेरे अन्दर छोड़ गये थे—याद है न—देखो यही है वह—तुम्हारा ही ठहरा, तुम्हारे ही लहू का लहू।

सुरेश—क्या सच ? *(सुरेश बच्चे की ओर झुकता है)*

रानी—उसका चेहरा ही गवाह है—उसीसे पूछ लो कि यह नाक-नक्शा कहाँ से पाया उसने।

(वह बच्चे की ओर खिच जाता है, आँखें भर आती हैं)

सुरेश—ओफ़ ! जिस दिन के लिए एक दिन हम दिन गिना किये वह आज आया भी वो क्या आया जब अपना ही पराया हो गया और पराया···जाने दो·····

रानी—अजी, पराया पराया ही रहेगा और अपना अपना ही। आखिर कभी तो आसमान साफ होगा ही।

सुरेश—अब क्या होने को है, जो होना था सो हो चुका। हम लाख सिर मारें, घड़ी को सूई वो पीछे लौटने से रही··· तुम इस्लाम का पल्ला थाम चुकी और यह एक ग़ैर का बेटा·····

रानी—दुत् ! बेटा तो तुम्हारा ही ठहरा—कहीं रहे, किसी नाम से, किसी की देख-रेख में। हीरा-हीरा ही रहेगा, कीच कादो या कोयले की कालिख में ही लिसा हो तो क्या ? देखो न, किस मुहब्बत से देख रहा है तुम को···हाँ रे, गुल्लू पहचानता है, यह कौन है ?

(बच्चा सिर हिलाता है)

लो देखो, यह क्या कुदरत की कशिश है कि वह खिंचा जाता

है तुम्हारी तरफ—कहाँ तुम हो कि आँख का पानी तक ढल गया।

सुरेश—(आवेश में) ढल गया कि पिये जा रहा हूँ उसे—कलेजे पर सिल रख के.....तुम क्या जानो, क्या गुजर रहा है मेरे रेशे-रेशे पर इस पल।

(सुरेश बच्चे को गोद में उठा लेता है—मुह चुमता है, आँख और गाल चूमता है। बच्चा रोने लगता है तो उसे पुचकार कर चुप कराता है)

मगर, कसूर माँफ—युसुफ जैसे एक शोहदे का हाथ उसके सिर पर है तो फिर हो सकता है वह कुछ का कुछ...

रानी—अजी, तुख्म की तासीर सब पर हावी रहती है—समझे! शरीफ की औलाद शरीफ ही रहेगी—कहीं रहे, किसी हवा-पानी में.....

सुरेश—मगर पिता जी तो कुछ और ही कह गये...जाने दो, तुम सुन कर नाहक......

रानी—समझ रही हूँ मैं, मगर वह ऐसा न कहे तो एक कमीने की औलाद तुम्हारे गले मढ़ें कैसे। उन्हें तो अपनी नाक ऊँची रखनी रही—कोई मरे या जिये।

सुरेश—(चौंक कर) तुम्हें कैसे पता—सुनूँ भी!

रानी—उसी युसुफ से, जिसने तुम्हारी शादी की रिपोर्ट और फोटो दिखा कर मेरे होश-हवास के धुर्रे उड़ा दिये... आ गई उसके चक्रमें में।

सुरेश—रिपोर्ट.....फोटो.....सो क्या?

रानी—ऐ लो, तुम्हें पता नहीं। अजी, वह अन्दर ही अन्दर ताव खाता रहा—तुम हाथ धो पीछे जो पड़े थे उस खोई हुई लड़की के उबार के लिए और लो वह ईंट का जवाब पत्थर से दे बैठा।

सुरेश—तो मेरा खयाल सच ठहरा—उसी ने बेचारी बेला की वैसी गत.....

रानी—तो और किसने! कहीं मेले में उस लड़की को युसुफ ने भर नजर देख लिया—उसे पसन्द आ गई। बस दायें देखा न बाँयें, कम्मा मार उसे ले उड़ा। दो-चार छँटे

हुए ऐसे लफंगे तो बराबर साथ रह आये उसके।

सुरेश—मगर तुम भी उसकी नज़र पर थी—मेरे फरिश्ते को भी वैसी खबर न थी।

रानी—मैंने तो बहुत पहले ही एकाध बार उसकी आँखों में वैसी शरारत की झलक देखी थी, मगर मेरी आँखों के रुख से कोरा जवाब पाकर वह उठते-उठते गुम हो गई—जान गया वह यहाँ कि दाल गलने की नहीं।

सुरेश—तो फिर तुम उसकी जाल में आने क्यों गई?

रानी—उस दिन मैं अपने में रही कहाँ—तुम्हारी शादी की भावली में आ गई। यह तो महीनों बाद पता चला कि क्या-क्या बन्दिशें हुई थीं तुम्हें जूल दे कर······

सुरेश—छोड़ो भी इन बातों को। वही हम थे कि जो तुम्हारे क्या थे—कैसे अपने थे एक दिन—अब वही हम हैं कि तुम कहाँ और हम कहाँ—दोनों के बीच एक हिमालय खड़ा हो गया है जैसे। बस एक टीस-सी कलेजे में रह-रह कर उठती रहती है कि तुम हमारी न हुई—यह लज्जा भी हमारा...जाने दो—जो हुआ,हुआ।

रानी—मैं तो किसी की भी न रही—अपनी हँसी-खुशी, अपनी जिन्दगी से भी जवाब पा चुकी। बस, पाँव घसीटती चली जा रही है यह लटी-लुटी देह, उसकी वह ज़िन्दगी तो वापस आने से रही। और खुशी तो खुशी, अब दर्द की पहचान भी सीने में न रही—आँखों के आँसू तक जाने क्या हो गये—भूल कर भी जो आते हों कभी मदद को। बस,

एक आह सीने में रह गई है, गो
उसमें भी कुछ असर नहीं है।'

सुरेश—तो क्या युसुफ ने तुम्हारे साथ—

रानी—नाम न लो उस शैतान का। उसे तो तुम्हें जवाब देना था, और वह जवाब, वह भरपूर वार मुझ गरीब पर अत्याचार बनकर आया—लूट लिया मेरा सर्वस्व। छोड़ा क्या उसने? अपना धर्म, कुल, मान सब कुछ तो खो बैठी—पाया क्या—एक नाम...बराय नाम, युसुफ-

की बीवी; और लो उसी बीवी को चंद महीने बाद हवा बताकर जाने किसे लेकर कहाँ उड़ गया—अब करती तो क्या करती।

सुरेश—भला ऐसा निकला वह!

रानी—मैंने तो लाख सर मारा था कि वह आदमी बने; मगर बना नहीं। बने कैसे? पत्थर में जोंक तो लगने से रही—उसके कानों में तो शैतान ने शीशा भर दिया है—सब कुछ सुनते हुए भी उसने कुछ न सुना। उसकी बुनियाद····उसके लहू की छलांग जो बड़ी वैसी है। बस, डूब कर घाट-घाट का पानी पीना—आज यहाँ कल वहाँ—किसी का होकर रहना तो उसके ख़मीर ही में नहीं। और बनता है बड़ा पानीदार···हूँह! यह मुँह और मसूर की दाल।····

सुरेश—मगर, ऐसा तो उसे कभी नहीं चाहिए था।

रानी—तुम मर्दों का भरोसा! सभी तो ऐसे ही वैसे हैं—उन्नीस-बीस। मैं पूछती हूँ, तुम्हीं को चाहिए था यों फटी जूती की तरह मुझे ठुकरा देना—अन्धाधुन्ध उजाड़ कर मेरी जगह एक कहाँ की ग़ैर को बसा लेना। अब भी दिल ठंढा हुआ तुम्हारा?··· हाँ जी, तुम्हें क्या? तुम्हारा तो कुछ गया नहीं।

सुरेश—गया नहीं? अपना बेटा खोया—पराया गले पड़ा। यह ज़हर का घूँट शर्बत का घूँट मान पिये जाना 'वही जानता है जो वह जानता है'

रानी—मगर, यह तो कोई ऐसा असाध्य रोग नहीं, इसका इलाज तो तुम्हारे हाथ ठहरा—हाँ, वक्त चाहे जो लगे।

सुरेश—हमारे हाथ—सो कैसे?

रानी—*(बच्चे की ओर इशारा कर के)* यह सयाना हुआ नहीं कि इसको छूट हो गई—जिधर मुड़े खुशी उसकी। मुझ पर भी कोई आँच न आ पायेगी—बस अपनी पौर पर खींच लेना तुम···आर्य-समाज के दौर में तो यह कोई वैसी बात नहीं।

सुरेश—मगर खरबूजे को देख कर खरबूजा जो लगता है रंग

बदलने। जिस सुहबत में पल रहा है वह, उसीका होकर रह गया, तो···है याद न शेर के बच्चे का वह क़िस्सा—बचपन में पढ़ा होगा तुमने भी।

रानी—कहो न—क्या है?

सुरेश—लो सुनो, शेरनी का एक बच्चा पैदा होते ही बकरियों के एक गिरोह में जा पड़ा—उसकी माँ जो प्रसव-पीड़ा से उबार भी न पाई थी कि किसी जालिम की गोली की शिकार हो गई, और बस, वह बकरियों का हो रहा, लगा उसी तरह घास चरने, मिमियाने तक···सुहबत असर···

रानी—मगर, तुम क्यों भूले जा रहे हो कि कुछ दिनों बाद शेर की नज़र जो पड़ी तो उसे लगा—हो-न-हो, यही होगा वह मेरा बच्चा···आख़िर तो लहू की कशिश। और वह झपट्टा मार उसे ले उड़ा। बच्चा डर के मारे मिमियाता रहा तो क्या, शेर ने उसके मुँह में माँस का एक टुकड़ा ठूस ही दिया। पहले तो वह तड़पा उसे उगल देने, पर लहू का स्वाद लहू में घुल-मिलकर रहा—वह पा गया गोश्त का मज़ा। फिर क्या था, शेर ने उसकी गरदन थाम बहते पानी में उसका चेहरा दिखा दिया—बस, पहचान लिया उसने अपने को। समझे—

सुरेश—जी, बात तो पते की है तुम्हारी··

रानी—तो कुदरत की कशिश ही ऐसी है कि वह आप खिंच आयगा अपनी बुनियादी पौर पर। बस, अभी से किसी हीले उस पर मुहब्बत की एक नज़र रखो···मेरे यहाँ तो कोई पुरसाँ हाल भी नहीं—बस अपने काम से काम।

सुरेश—मगर तुम्हारे लिए भी तो मैं कुछ सोच रहा हूँ····

रानी—अजी, छोड़ो भी मुझको···मुझ जैसी के जीने में रखा ही क्या है, जिये जा रही हूँ, यही ग़नीमत है। दिन तो ख़ैर कट ही जाता है, यह वह लिये, पर रात तो आँखों में ही कटती है—और ये आँखें हैं कि डूबी हुई, अतीत के सारे पन्ने उलटती रहती हैं तेज़ी से।

सुरेश—अच्छा होता कि तुम उस अतीत को भूल जातीं···इस ज़िन्दगी के किसी मोड़ पर हम-तुम कभी मिले थे।

रानी—जैसे कि अख्तियार है अपना। इस जिन्दगी की जंग लगी सतह पर से उस अतीत को खुरच-खुरच कर साफ कर दूँ,—अपने हाथ नहीं। मेरे मस्तिष्क के रेशे-रेशे पर तुम्हारी याद ने वह ताना-बाना बुन दिया है कि बस ! सच मानो, वह याद तो अपनी हर साँस में बस गई है जैसे।

सुरेश—हाँ भई, मैंने तो सुन रखा है कि मिर्जा साहब के घर से तुम्हारा खानदानी सरोकार रहा—बड़े शरीफ हैं वे सब·····

रानी—सो सही है। उनकी शराफत के क्या कहने—नहीं तो आज मुझे कहीं खड़ी होने की भी जगह होती, जब युसुफ उस घर का कोई वैसा अपना नहीं··

सुरेश—अपना नहीं··सो क्या ?

रानी—उसकी माँ तो शहर की एक खूबसूरत तवायफ थी, मलका जान, जो कहने को तो छोटे मिर्जा के पलंग की दावेदार रही—मगर रंडी और वफादारी ! उसी लहू का असर तो बोल रहा है युसुफ के सर पर आज भी—जाये कहाँ, ऐसे बड़े शरीफ के साये में रह कर भी तो नहीं गया। बस, उससे जो कुछ न हो, वह थोड़ा है। यह तो कहो कि बड़े मिर्जा की आँख में पानी है कि उसे एक अपना ही क़रार देकर घर में जगह दे रखी। कोई और होता तो मलका जान के मरते ही उसकी गर्दन में हाथ दे बैठता कभी···

(खिलौने वाले का प्रवेश)

खिलौने वाला—ऐ लो, ये लाल गुब्बारे····यह उड़ती चिड़िया··
यह विलायती गुड़िया····

(बच्चा छुन्नन उठता है)

सुरेश—क्या लोगे ? बोलो।

(सुरेश उसे गोद में उठा लेता है)

लो गुब्बारे—यह गोरी गुड़िया।

(सुरेश जेब से रेजकारियाँ निकाल कर खिलौने वाले को देता है—खिलौने वाला फिर हाँक लगाता हुआ दूसरी ओर मुड़ जाता

है। गुबारे और गुड़िया को वह बच्चे की ओर बढ़ा देता है—बच्चा खुल-खिल उठता है)

सुरेश—गुलाब के फूल-सा खुल-खिल रहा है मेरा लाल—है न ? *(वह बच्चे के मुह को चूम लेता है)*

रानी—तो लो, यह गुलाब ही रहा—यही नाम····है न गुल्लू ? आज तुम्हारी गोद में उसे देखती हूँ—इधर मेरा दिल है कि उमड़ा चला आता है बेबस··तुम जियो, फूलो-फलो, तुम्हारा बेटा जिये, बस—

"मुझे ज़िन्दगी की तमन्ना नहीं है
तुम्हारे लिये ज़िन्दगी माँगता हूँ।"

(दूसरी बुर्के वाली का प्रवेश)

बुर्का वाली—अरे, तुम यह किससे घुल-मिल रही हो यहाँ—कौन है तुम्हारा वह ?

(सुरेश अलग सरक जाता है)

रानी—है एक अपना जानी-पहचानी—पड़ोस ही में घर ठहरा।

बुर्का वाली—भला छोटी बी··यह बात तो बड़ी वैसी है। बाप के घर जैसी भी रही हो भले ही, मगर अब तो जिस घर में आई हो, उसीकी लीक लेनी है तुम्हें। देखती हूँ, तुम्हें अपनी देहरी से बाहर लाना भी खैर नहीं। लो उठो, घर चलो...लाओ, बच्चे को इधर दो। *(वह अपनी गोद में समेट लेती है)*

[दोनों बुर्के वाली जाती हैं। सुरेश बच्चे को एक टक देखता है—आँखें फाड़। बच्चा भी सुरेश की ओर मुड़ा है। सुरेश हाथ का रूमाल हिला-हिला कर इशारा कर रहा है। उसी पल पीछे से सुरेश के पिता आते हैं। उनकी गोद में भी एक बच्चा है। वे आकर सुरेश के कंधे पर हाथ रखते हैं। सुरेश चौंक कर पीछे मुड़ता है और पिता के चरणों को छूकर प्रणाम करता है।]

प्रेम०—हाँ जी, वह बच्चा कौन था—कैसा ?

सुरेश—*(सर झुका कर)* अपना ही ठहरा—आप भूले न होंगे।

प्रेम०—अच्छा ! यह बात है ! और वह बुर्कावाली ..उसकी माँ है न ?

सुरेश—जी, आज ही तो बरसों पर उसे देखा।
प्रेम०—अच्छा! देख पाये तुम उसे—बुर्क़ा उतार सामने आपाती है वह?
सुरेश—उसकी आँखें तो सामने ही थीं। ओह! कितनी करुण, कितनी कातर और कितनी तृषित!....और ज़बान कहे या न कहे, आँखें तो कही देती हैं दिल की लगी-लिपटी। मगर, उस बिचारी की तो ज़बान ने भी कुछ पर्दा न रखा, दिल के सारे कच्चे चिट्ठे खोल बैठी। बड़ी मुसीबत में है रानी—कहीं की न रही...क्या करूँ—कैसे करूँ?
प्रेम०—भला तुम्हें क्या? वे कब तुम्हारे हुए या होंगे?
सुरेश—हमें क्या! दिल पर जैसे अख्तियार है किसी का।
प्रेम०—लो, कहाँ मैं समझता रहा कि वह चिनगारी तो बुझ चुकी......
सुरेश—जी, वह दबी हुई चाहे जो रही हो पर बुझी हुई नहीं। खैर, छोड़िये भी...जो हुआ—हुआ......यह कहिये कि आप अभी आ रहे हैं क्या?
प्रेम०—हाँ, तुम्हारी बहू भी आई है साथ। उसे वहीं सामने तुम्हारे घर पर छोड़ आया हूँ। मेरी तबदीली भी तो इसी शहर में हो रही है। मगर हाँ, आर्य-समाज का आफ़िस यहाँ से कुछ दूर ठहरा—बस, यह रनबीर हमारा साथ देगा.......है न बच्चू? हाँ भई, यह तो कहो. जेल में कैसे दिन कटे?
सुरेश—अच्छे ही रहे—कोई बात नहीं। वैसे संगी साथी तो जानें कितने रहे वहाँ, मगर करीम भाई से खूब गहरी छनती रही। इस्लाम क्या है, मुहम्मद साहब ने अरब के अन्दर क्या रूह फूँकी, कैसे काया पलट दी—उसे जान लिया, समझ लिया।
प्रेम०—अच्छी बात है, जानते रहना चाहिए। उन्हें भी अपने ऋषियों की देन जता देते तो यह लेन-देन आपस के मेल-जोल में चार चाँद लगा पाती।
सुरेश—जी, उन्हें भी यही लगन थी—यही धुन। हम एक दूसरे के करीब आते गये...आज तो चन्द कांग्रेसी मुसलमान

ऐसे भी हैं कि कहीं उन्हें थोड़ा-सा भी ऊपर से खुरचिए तो वे अन्दर से एक अन्धाधुन्ध मुल्ला ही निकल आते हैं जाने कैसे, मगर हाँ, सभी ऐसे नहीं—करीम भाई तो जो बाहर हैं, वही अन्दर भी।

प्रेम०—तो हमसे भी उन्हें मिला देते किसी दिन·····

सुरेश—जी, और क्या? और, अब तो जेल से बाहर आकर भी एक साथ ही दाल-रोटी का इन्तज़ाम सोच रखा है। जा रहे हैं साथ-साथ प्रेस खोलने—बस, आपकी एक नज़र रहे। भगवान ने चाहा तो····

प्रेम०—अजी, तुम चाहो तो भगवान भी चाहे। कामयाबी तो अपनी हिम्मत के हरम की बाँदी ठहरी—है न?

(खिलौने वाले का प्रवेश)

खिलौने वाला—ऐ लो, ये लाल गुबारे, ये उड़ती चिड़ियाँ, ये विलायती गुड़ियाँ।

प्रेम०—अरे भई, एक गुबारा हमारे रनबीर के लिए भी ले देते।

सुरेश—पैसा तो रहा नहीं शायद·····

(सुरेश लगता है जेब टटोलने)

प्रेम०—सच? देखता हूँ तुम्हारा दिल अभी जेल से नहीं छूटा—शरीर भर छूटा है, बस।

सुरेश—(चौंक कर) कैसी बातें करते हैं आप भी!···

प्रेम०—यही कि मोह हावी है छोह पर—संस्कारों के जेल से तुम्हारा हृदय मुक्त नहीं हो पाता है। कौन क्या है—कैसा?—तुम अभी देख नहीं पाते हो, खुली नज़र जो मयस्सर नहीं।

सुरेश—अपनी-अपनी नज़र ठहरी, पिताजी—मुझे तो इस बच्चे के चेहरे में युसुफ की शक्ल जो दिख जाती है।

प्रेम०—मगर, मुझे तो इसकी सेवा-परायण माँ की ही छाया दिखती है, जो पति के जेल जाने की खबर पाकर दो पल भी अपने में रह न सकी। दो दिन के बच्चे को मुझ पर छोड़ सत्याग्रह पर तुल गई—और लो, फिर क्या? जेल ही में पनाह पाई आखिर।

सुरेश—ऐसा !

प्रेम०—जी, तुम्हें पता नहीं क्या, अभी इस दिन तो जेल से छूट कर आई है बिचारी।

सुरेश—हाँ पिताजी, वह तो दूध की धोई ठहरी। उसके लिए तो मेरे दिल में भी जगह है बराबर। अब तक वह मेरे साथ न रही—न रही। चाहता रहा कि कुछ दिनों में नहा-धो, पाक-साफ होकर अपनी पवित्रता की पौर पर लौट आये।

प्रेम०—वह तो कभी की लौट आई। और तुम्हारा साथ देना न रहता तो वह जेल-जीवन अपनाती क्यों? बहू तो मांग कर गई थी जैसे तुम्हारी ही सेवा करने, मगर सरकारी मर्जी—उसे अलग जेल में नज़रबन्द रखा गया—रह गई बिचारी हाथ मलकर। लो, वह क्या आ रही है तुम्हें ढूँढ़ने।

(बेला का प्रवेश—पति के चरणों पर झुकना—सुरेश का झुक कर उसे उठाना और साथ-साथ पर्दे का गिरना)

---

*

तृतीय अंक

प्रथम दृश्य

(कोई अठारह साल बाद। सुरेश के घर की बैठक। सुरेश अब अधेड़ सिन का है। प्रेमनाथ जी सत्तर के पड़ोस में हैं—बाल सुफ़ेद। सुरेश एक चौकी पर बैठा है। उसके पिता आराम-कुर्सी पर लेटे हैं।)

(रनवीर का प्रवेश। वह अब बीस साल का युवक है।)

प्रेम०—लो सुरेश, रनवीर तो आ गया प्रथम श्रेणी में बेजोड़। सुबह का रंग देखकर ही हम दिन का अन्दाज़ लगा पाते हैं— मेरा तो रोआँ-रोआँ भर उठा है आज।

(रनवीर आकर सुरेश के चरणों को छूकर प्रणाम करता है।)

सुरेश—तो इमविहान का नतीजा निकल गया क्या ?

रनवीर—जी, कल ही आ गया—आज तो अखबारों में भी है वह।

सुरेश—अच्छा लाओ तो देखूँ।

(सुरेश के हाथों में रनवीर अख़बार देता है, वह उलट-पुलट कर देखता है। सुरेश की कन्या मीरा का प्रवेश—सोलह का सिन। गोरा मुँह, छरहरा बदन, बड़ी-बड़ी झूम-झूम आँखें —सुन्दर-सुडौल आकृति)

प्रेम०—लो मीरा, तुम्हारे भैया तो आज ग्रैजुएट हो रहे न— अब तुम्हारी बारी आती है, देर नहीं।

मीरा—जाओ भइया, अन्दर माँ बुला रही हैं तुम्हें—प्रणाम कर लो।

(रनवीर अन्दर जाता है)

प्रेम०—तुम्हें भी तो मैट्रिक से मोर्चा लेना है इस साल, तैयार हो न…मीरा ?

मीरा—कैसे क्या करूँ ? पिताजी को फुर्सत ही नहीं—कांग्रेस का काम, प्रेस के झंझट। कहाँ आप ठहरे आर्य-समाज-आफिस में—मीलों दूर। भैया भी आपके साथ ही रहे—कोई आस-पास नहीं जो मेरी मुश्किल हल कर दे।

सुरेश—(*मीरा की ओर मुड़कर*) तो आखिर तुम्हें आता क्या है ? अपने पर भरोसा नहीं क्या ?

प्रेम०—जाने भी दो, दो-चार महीने के लिये कोई ट्यूटर ही रख देते।

सुरेश—क्यों ? गुलाब है न—अब चाहिये क्या ?

मीरा—भला गुलाब भाई को कहाँ वक्त है—आये तो आये··· किसी दिन फुर्सत रही तो।

सुरेश—तो वह कोई वेतन थोड़े ही पाता है जो सुबह-शाम··

प्रेम०—मगर, तुम तो हर महीने, पचास या कितने देते रहे हो उसे।

सुरेश—यह महीने की भी एक ही कही आपने। भूल गये, वह तो उसके अपने पढ़ने के लिए ठहरा—कुछ मीरा को पढ़ाने के लिए नहीं। बस, उसकी शराफत या मुहब्बत कहिये कि मीरा की पढ़ाई पर एक नजर रखता है बराबर।

प्रेम०—अच्छा भई, तो एक साइकिल लिये देता हूँ—रनवीर यहाँ प्रतिदिन आकर···

सुरेश—कोई बात नहीं। गुलाब तो पड़ोस ही में ठहरा और मीरा की एक सहपाठिनी भी है वहाँ—मिर्जा साहब के घर की कोई लड़की, हसीना··· माँ-बाप नहीं—बड़ी भोली-भाली है बिचारी। वहीं दोनों साथ-साथ अपनी मुश्किल हल कर लेंगी।

प्रेम०—जानो तुम, मगर मुझे तो उनके यहाँ जाना वैसा जँचता नहीं।

सुरेश—पिताजी, वे दिन तो अब रहे नहीं। आज हिन्दू-मुसलमान तो भाई-भाई ठहरे—एक नेशन, एक राह, एक मंजिल। देखिए न, करीम भाई उठ गये तो क्या, उनके घर से कैसा भाईचारा है आज भी।

प्रेम०—उस घर की बात कुछ और है—उनका लड़का सुल्तान तो हमारे रनवीर का एक अभिन्न सहचर ही ठहरा। वह भी पास कर गया अच्छे दर्जे में…

सुरेश—अच्छा, दोनों ही आ गये साथ-साथ !

प्रेम०—मगर, मिर्ज़ा साहब का घर तो अंग्रेजी सरकार की नाक का बाल रह आया है बराबर। और जिस मदारी के डमरू पर यहाँ के चन्द लीगी लीडर लगे हैं कुलाँच लेने, वह क्या किसी से पर्दा है आज ?

सुरेश—उससे क्या ! गुलाब तो हमारी देख-रेख में है—चाह भी रहा है गांधाजी की गिरोह में शामिल होना··हाँ री मीरा, अन्दर से मेरी चादर और चश्मा तो लिये आना।

(सुरेश अख़बार उलट-पुलट कर फिर देखता है)

प्रेम०—क्या देख रहे हो सुरेश, किसी का नाम ढूँढ़ रहे हो क्या ?

सुरेश—देख रहा हूँ, गुलाब आइ० ए० में आया या नहीं। ····बेचारा वैसा कुछ कर न सका—माँ की बीमारी की वजह हाथ मलकर रह गया।

प्रेम०—वही कहा, तुम्हारे चेहरे पर शिकन क्यों है—खुशी की कोई भटकी किरन भी····

सुरेश—क्या खुशी हो, कहिये। दुनियाँ न जाने, पर आप तो जान रहे हैं··जाने दीजिये··आप तो खुश हैं न।

प्रेम०—हैं नहीं ! मैंने जो कुछ अपने बेटे के हाथों नहीं पाया, वह पोते के हाथों पा गया। तुम ग्रैजुएट हुए ज़रूर, मगर युनिवर्सिटी में कोई वैसी जगह नहीं ली।

[तार-पिउन का प्रवेश—तीन-चार तार सुरेश के हाथों में देता है। सुरेश एक तार खोल कर पढ़ता है और फिर चारो उठा कर बगैर पढ़े पिता जी की ओर बढ़ा देता है।

सुरेश के पिता लिफाफा खोलते हैं, उनका चेहरा खुशी से दमक उठता है। उसी पल मीरा अन्दर से आकर चश्मा और चादर टेबुल पर रख वापस चली जाती है।]

प्रेम०—जो चश्मा आ गया, तारों को एक नजर देख तो लो।.... देखो न, क्या-क्या बधाई है—शाबाशी भी। और तुम

हो कि आँखों में आँसू पिरोये बैठे हो जैसे। कहाँ खुशियाँ मनाते—कहाँ यों मुँह लटकाये......

सुरेश—पिता जी, आप नाहक भरते हुए जख्म को भी खरोच-खरोच कर ताजा किये देते हैं। मैंने अपनी ओर से कभी कुछ उठा रखा। रोजमर्रे के व्यवहार में भी निबाह किये गया बराबर, मगर दिल न माने तो चारा ?......आखिर पुत्र के प्रति पिता का जो एक आन्तरिक अपनापन है-ममता का एक मर्मस्पर्शी स्पन्दन, वह तो किसी शिक्षा या दीक्षा की देन नहीं, न वहाँ किसी क्यों और कैसे की गुंजाइश ठहरी। मैं पूछता हूँ, आज यह रनबीर वैसा अपना होता......

प्रेम०—फिर वही बात! वह अपना नहीं तो कौन अपना है आज। कौन है तुम्हारे स्नेह का भूखा, तुम्हारे कुल का उजेला, तुम्हारे बुढ़ापे का सहारा—बोलो ? एक दिन वह था जब परलोक का हौआ...पुन्नाम नरक से उबार के लिए पुत्र की वैसी मांग थी। आज के दिन तो अपने ही हाथों लोक-परलोक दोनों ही ठहरे—किसी और के भरोसे नहीं। बेटे की चाह तो बस अपनी एक......जाने दो।

सुरेश—फिर भी पिताजी, इसी नाते की नींव पर तो दुनियाँ टिकी है आज भी।

प्रेम०—मगर कोई भी नाता ले लो—पति-पत्नी या पिता-पुत्र का ही, अगर ताली दोनों हाथों नहीं बजी तो फिर वह मेरा नहीं—मैं उसका नहीं। लो, पुत्र वह है जो पुत्र बनकर बरते—तुम्हारे सुख-दुख, चढ़ाव-उतार में साथ-साथ उठे या गिरे; तुम्हारी संस्कृति का पल्ला थाम फूले-फले, तुम्हारा नाम उजियार करे—बलासे, उसकी बुनियाद चाहे कुछ भी रही हो कभी, कोई बात नहीं... वही आज तुम्हारा अपना है—अपना बेटा।

सुरेश—अपना बेटा! ऐसा ? क्या खूब! उस बदजात युसुफ का बेटा अपना...आपने अपना जामा पहना दिया है इसलिए ? भला कुत्ते की दुम कोई लाख सहलाये, कभी सीधी होने की है ?

प्रेम०—अजी युसुफ का बेटा तो वह ठहरा जो युसुफ का नाम, ईमान और खानदान ढोये फ़िर रहा है अपने सर पर—उसी के लिए उठना है या गिरना।

सुरेश—मगर, जिसकी देन वह आदमी की शक्ल पाकर इस धरातल पर आया, वह मुख्य ठहरा या··

प्रेम०—किसी की देन हो—उससे क्या ? यहाँ तो आया भी न होगा कि बुनियादी नींव से मुँह मोड़ मुड़ गया एक ग़ैर के घर। तुम्हारा होकर न आया, न रहा तो फिर वह आज क्या है, कहाँ है तुम्हें क्या ?

सुरेश—आप कहने को चाहे कुछ कह लें। बड़े ठहरे—आपकी ज़बान कौन पकड़े, मगर एक तो वह अपना ही ठहरा—हमारे लहू का लहू, दूसरे उसकी माँ की सर-बीवियाँ जब सामने आती हैं, तो लाख-लाख धिक्कार मेरे रोम-रोम में दंश दे उठते हैं—ज़िम्मेदार जो मैं ठहरा। अब जैसे भी प्रायश्चित्त हो·····

प्रेम०—मगर, होनहार के आगे अख्तियार क्या, प्रतिकार क्या ? और जानते हो न, अपने ही बेटे कर्ण ने जब पराये का पल्ला थाम लिया, तो कुन्ती का मातृत्व तक दो पल में उड़ गया। कहाँ माँ-बेटा—कहाँ वह छत्तीस का रिश्ता···

सुरेश—*(खड़ा होकर, पिता के पास आता है)* मगर काश, वह ग़ैर का पल्ला छोड़ लौट आये अपनी बुनियादी पौर पर तो ?

प्रेम०—अब क्या लौटेगा भला, जब अब तक नहीं लौटा। जिस रंग में आना था आ चुका वह। बूढ़ा तोता भी कहीं राम-राम पढ़ता है ?

सुरेश—आप को पता नहीं, गुलाब की रुझान क्या है आज। मैं तो समझता हूँ कि अजब नहीं कि उस मियाँ के घर से रिश्ता तोड़·······

प्रेम०—ऐसा ? है तुम्हें विश्वास ?

सुरेश—है नहीं ? बस, आपकी ओर से कोई बात ऐसी न हो कि·····

प्रेम०—मेरी ओर से तुम्हें छूट है। उसे हमारी पौर पर सच्चे दिल से ला सको तो फिर क्या? वह रंग ही बदल गया—सर-आँखों से उसे हम चूम लें। एक नहीं दो-दो हमारे घर के चिराग़ रहे—हमारा सर ऊँचा ही उठता है, कुछ झुकता नहीं।

सुरेश—देखिये, उम्मीद तो ऐसी ही है।

प्रेम०—यह तुम बोल रहे हो या तुम्हारी चाह बोल रही है?

सुरेश—आप ही समझें—जो कुछ स्नेह या सहारा उसे आज तक मिला है, वह इसी पौर पर मिला, कहीं और नहीं—अपने घर भी वैसा नहीं।

प्रेम०—तो क्या तुम उसे जता चुके हो कि उसकी माँ तुम्हारी ही....

सुरेश—भला यह भी जबान पर लाने की बात है· अपनी माँ की जिल्लत!—हाँ वह इतना जान रहा है कि उसके नाना क्या थे, कैसे थे, और मिर्जा साहब के घर से क्या सरोकार रहा—उसी सरोकार की बेदी पर उसकी माँ की बलि हो गई, नहीं तो क्या ऐसी पड़ी थी कि हिन्दू होकर इस्लाम के दर पर माथा टेकती वह।·· बड़ी सीधी-सादी रही—अब्बा की भावली में आ गई।

प्रेम०—तो तुम्हें पता है, उसकी माँ तो शायद अपनी जिन्दगी से भी बेज़ार··

सुरेश—जी, और क्या? युसुफ मियाँ तो कभी भूले-भटके दो चार दिन के लिए आये तो आये, बस आठो पहर नजर-बन्द आँसू पिये जा रही है बिचारी—दो रोटी का रिश्ता, बस। शौहर की कमाई होती तो यों सर हथेली पर लिये फिरती। अभी तो गुलाब जान रहा है कि उसका सच्चा दर्द शरीक कोई है तो बस मैं हूँ।··भर-सक वह घर से खिंचा रहता है अक्सर—अब्बा का हाथ उसके सर पर वैसा होता तो क्या जानें कहाँ छलाँग लगाता वह।

प्रेम०—जो हो, यहाँ आकर जो सिर झुकाये, हमें तो अक्सर

ऐसा लगता है कि एक दिन अपने अब्बा के भी कान तराश ले तो अजब नहीं।

सुरेश—(हँसकर) माँफ कीजिये—अपनी-अपनी नज़र ठहरी। आप को कुछ दिखता है, हमको कुछ।

(रनवीर आता है अपनी माँ और बहिन के साथ)

सुरेश—ऐलो, कहाँ चली तुम—यह थाल में क्या ले रखा है, भला ?

रनबीर—पूजा का सामान है पिता जी—माँ जो जा रही है मन्दिर में। कहती रही कि हमारी परीक्षा की मन्नत।

प्रेम०—भला रनबीर, यह मूर्त्ति-पूजा की योजना—अपनी बहू से तो ऐसी आशा न थी मुझे।

रनबीर—सुनती हो न, माँ—दादा जी की शान पर बट्टा जो आ रहा है। वह ठहरे···

बेला—मुझे भी लगा कि यह क्या कर रही हूँ मैं, पर किये जा रही हूँ लाचार—बचपन से इसी हवा-पानी में जो पल आई। संस्कार के आगे बिचार भी घुटने टेक देता है अक्सर।

रनबीर—जाने दीजिये दादा जी, परिवार के अन्दर कोई वैदिक धर्म पर चले, कोई सनातन पर ही तो हर्ज क्या, संघर्ष क्या—अपनी-अपनी राह, अपनी-अपनी पहुँच।

सुरेश—बात तो बड़े पते की है तुम्हारी, मगर आदश का पालन ˙ नहीं-नहीं समय का स्पन्दन भी तो यह है आज कि पिता जो आर्य-समाजी हैं—रहें, हम थियासोफिस्ट तुम्हारी माँ सनातनी, और तुम नई पीढ़ी की नई मांग—हम सब से कहीं आगे, कहीं स्वतंत्र, इस्लाम को भी साथ लिये चलते जी उड़ेल।

प्रेम०—शाबाश—क्या बात कही है तुमने··कैसी खूबसूरत·· हाँ, ऐसा होता तो ऐसा होता। और हमारी मीरा क्रिस्तान होकर रहती तो यह आदर्श और भी निखर उठता—है न ?

सुरेश—जी, कोई बात नहीं—बस, शर्त यह है कि आपस के मेल-जोल पर कोई आँच न आये।

रनवीर—तो लो मीरा—किसी मिशन स्कूल में भर्ती हो रहो, और मन्दिर न जाकर पास के गिरजे में ही···

मीरा—तुम्हारी भी क्या बातें हैं ! चले, रंग चढ़ाने। तो जरा देर-सबेर नमाज़ पढ़ते। पिता जी तो कबसे कहते आये हैं तुम्हें कि कुरान जान लो।

सुरेश—तो बुरा क्या ? रनवीर को आज की दुनियां की जानकारी होती तो मेरे प्रस्ताव पर चौंक नहीं उठता—मेरी बात की तह ढूँढ़ता। अगर वह हिम्मत बाँध इस्लाम का पल्ला थाम ले तो मेरी बन ही आई भरपूर। मुहम्मद साहब की जीवनी से उसे वह प्रेरणा मिलेगी कि···

प्रेम०—लो, क्या बात से बात पैदा की है तुमने। बात की बात में कहाँ उठ आई भला—तुम भी जैसे सिरियस हो गये···

सुरेश—सौ बात की एक बात है पिता जी—यह हमारा ही अभाग है कि हमारी नज़र की तंगी नहीं जाती। सच मानिये, इस देश का बेड़ा तो इसी प्रयोग की पतवार थाम पार हो पायेगा। हम ठहरे गांधी के अनुयायी—हमारे साथ उसूल ही नहीं, अमल भी रहे बराबर, और वह दिन दूर नहीं कि महात्माजी भी युग की इस मांग को खुल्लम-खुल्ला एलान कर रहेंगे। देखिये न, उनके यहाँ तो इंजिल, कुरान, और गीता की मिली-जुली धाराओं की त्रिवेणी का संगम तो हर भारतीय का तीर्थ है आज। बस यही हमारी प्रगति है—हमारी परिणति भी—फिर तो किसी खींचतान की गुंजाइश ही न रह पायेगी इस देश में।

"फूलों के कुंज दिलकश भारत में नित बनायें
'हर धर्म के शगूफे घर-घर में हम खिलायें"

प्रेम०—हाँ भई गांधीजी ने तो अपने ही घर में इस प्रयोग का अंजाम देख न लिया भर नज़र। जानते हो न, उनका बड़ा बेटा तो इस्लाम से नाता जोड़...

रन०—जाने भी दीजिये, गांधी जी ही जान रहे हैं कि क्या जान का जंजाल है यह।

(गुलाब का प्रवेश)

प्रेम०—लो भई, गुलाब भी आ गया। आखिर गुलाए के लिए भी तो कुछ सोच रखा होगा तुमने ?

सुरेश—जरूर, रनबीर के लिए कुरान पाक है तो गुलाब के लिए वैदिक धर्म-शास्त्र...है न गुलाब ?

प्रेम०—हो क्या गया है तुम्हें ? क्या-क्या सपने पाल रहे हो तुम—उलटे-पलटे ? पूरब का सूरज पच्छिम जाकर उगे तब कहीं जाकर हमारे देश में घर-घर ऐसे आदर्श परिवार की कल्पना...

सुरेश—सच मानिये पिता जी, आज का यह दिखावे का भाईचारा, यह मेल-जोल ही हमारी मजिल नहीं, इसके आगे अभी और बढ़ना है—और मोर्चा लेना...

"सितारों के आगे जहाँ और भी हैं,
अभी इश्क के इमतिहाँ और भी हैं।"

प्रेम०—खूब ! अपनी लगी भी क्या चीज़ है। कब किधर मोड़ दे—पता नहीं। मगर यों कौवे के पीछे दौड़ने के बजाय अपने कान की ओर ही देख पाते तो खैर...तो गुलाब की तरफ़ से तुम्हें इतमिनान है न ?

सुरेश—है नहीं ? वह तो मुझे ज़बान तक दे चुका है। मैंने गीता की एक कापी भी दे रखी है उसे।

प्रेम०—ज़बान की भी एक ही कही तुमने। हाँ जी, ज़बान का ही ज़माना है आज।...तो लिये रहो ज़बान तुम—ईमान चाहे कुछ हो उसका। अच्छा भई, चले हम। लो रनबीर, लिये जाओ अपनी माँ को मन्दिर—जैसी उनकी श्रद्धा।

सुरेश के पिता, रनबीर की माँ, रनबीर जाते हैं—मीरा भी माँ के पीछे जा रही है।)

सुरेश—तुम कहाँ चली भला ?

मीरा—अभी आई पिता जी—दो पल में, देर नहीं।

(मीरा चली जाती है। गुलाब सामने आता है।)

सुरेश—तो समझे गुलाब, मैं तो सपनों की एक दुनियाँ बसाये बैठा हूँ और गांधी के दम से ही मेरी यह दुनियाँ क़ायम है आज। कहीं मेरा सोचा और चाहा फल गया तो घर-

घर राम और रहीम की बन्दना साथ-साथ होगी और जानते-जानते हर कोई जान लेगा, पहिचान लेगा कि राम और रहीम की ज़बान चाहे दो हो, एलान दो नहीं; और गीता और कुरान की किताब चाहे दो हो—उनका फरमान दो नहीं। जभी तुम से—रनवीर से भी मुझे बहुत कुछ उम्मीद बनी है बराबर।/

गुलाब—रनबीर की बातें तो ख़ैर रनबीर जाने, मगर मेरी तरफ से आप इतमिनान रखें कि गुलाब की ज़बान को तले कोई दूसरी ज़बान नहीं—आप जहाँ पसीना बहायें, वहाँ लहू बहाने को तैयार हैं हम। और बात भी है—आपके सिवा मेरा रहा ही कौन ऐसा अपना।...माँ बिचारी तो रही, रही—न रही, न रही...ज़िन्दगी से भी हाथ धो बैठी है वह। रहे अब्बा, तो वे तो ईदके चाँद ठहरे—बस छठे छमासे किसी दिन यह आये और वह गये। सच मानिये, यह आप ही की जूतियों का सदक़ा है कि मैट्रिक से मोर्चा ले सका मैं—नहीं तो घर पर जैसी...

सुरेश—तो फिर तुम साफ खुल पाते तो हम रनवीर को भी झँझोड़ कर जगा देते। याद रखो, इसी एक प्रयोग पर ही हमारी तरक्की का दार-मदार है आज। और यही unity in diversity तो हमारी सारी संस्कृति की भीति ठहरी।

गुलाब--जैसी मर्ज़ी, आप जाने हमारी भलाई क्या है। मगर, जल्दी भी वैसी क्या है आख़िर। आप से तो पर्दा नहीं कि शादी के पहले माँ हमारी क्या थी...एक हिन्दू... लीजिये, इसी से कोर दबी है उसकी। अब कहीं हमारे इस नये रुख का अंजाम उस बिचारी के सर बीत गया तो कहीं की न रही वह—क्या जाने घर वाले उसी पर अपने दिल की जलन उतार बैठें ?

सुरेश—मेरा तो अंदाज़ है कि तुम्हारी माँ भी चाहती होगी कि...

गुलाब—वह तो बराबर चाहती आई है कि आप ही हमारे सिर पर—हमारे रहबर रहें। उन्हें तो अपनी फ़िक्र नहीं—

हो जो हो, बस जैसे भी आपकी नजर के साये में हम अपने पैरों पर खड़े हो पायें, यही एक दर्द सर है उनका। ...हाँ, भूल हो रही है, माँ ने आज मीरा को साथ लेते आने के लिए...

सुरेश—क्यों तुम्हारे यहाँ कुछ है क्या आज ?

गुलाब—क्या जाने, गाने-बजाने का कोई प्रोग्राम है शायद।

सुरेश—अच्छा ठहरो, देखता हूँ—यहीं पड़ोस में उसकी एक सहेली है उमा, वहीं गई होगी—और कहाँ।

(सुरेश जी बाहर जाते हैं। दूसरी ओर से ज़फ़र का प्रवेश)

गुलाब—अमाँ यहाँ कैसे आये तुम ?

ज़फ़र—तुम्हारी ही टोह लेने—तुम्हारे अब्बा जो आये हैं—ढूँढ़ रहे हैं तुम्हें। मगर, भई वाह ! तुम्हारा पता तो तुम्हारा मौला ही जाने। बग़ैर इधर की उधर लगाये जैसे तुम्हारी रोटी ही हज़म नहीं होती। रह गये तुम वैसे के वैसे ही।

गुलाब—(*हँसकर*) सो क्या ?

ज़फ़र—क्या-क्या ? सब सुन ली खड़े-खड़े अभी। हाँ जानते हो न, बड़ों की पिरीत तो बालू की भीत ठहरी। आज तुम से खुश हैं तो सब कुछ है—मगर कल ?

गुलाब—अमाँ कोई बात नहीं, यह हज़रत तो हवाई किले बनाये जा रहे हैं जानें कब से—हम भी अपनी ओर से एकाध ईंट रख ही देते हैं अकसर।

ज़फ़र—मगर कल तक तो इस हवाई क़िले की एक ईंट का भी पता न रहेगा—वह जलज़ला आना चाहता है कि गाँधी-टोपी के भी धुर्रे उड़कर रहेंगे, देख लेना।

गुलाब—जानते हो तुम—गाँधी से भी दो कदम आगे ही रखते हैं यह। उठे हैं घर-घर राम और रहीम को एक ही धागे में पिरोने। समझा न, क्या लाजवाब स्कीम है यह।

ज़फ़र—अच्छी बात है, आसमान से तारे उतार लायें—पहला क़दम उठायें तो इधर...Example is better than precept. शुरू करें अपने ही घर से।

गुलाब—जी, यही तो बात है—हम भी जरा देखें कि रंग पक्का है कि यों हीं...

जफर—जो हो, हो तुम एक ही हुशियार—कहीं कुछ, कहीं कुछ....
बहार में बुल-बुल, बरसात में परवाना। मगर यह दुरंगी चाल तो अब निभने की नहीं—पोल खुल कर रहेगी। तुम्हें पता है, जमाने ने क्या करवट बदली है आज ?

गुलाब—सब पता है—लगी है लीग की तूती बोलने।

जफर—तो लो, कांग्रेस को खड़े-खड़े सलाम कर लो—यही इस्लाम का फरमान है आज। (*नेपथ्य की ओर देखते हुए*) लो वह आ रही है तुम्हारी मीरा''क्या कहने इस निखार के !

गुलाब—क्या कहा ?

जफर—यही कि कली खुल रही है, अभी वैसी खिली नहीं है।

गुलाब—(*हँस कर*) मगर यारों की नजरें तो अभी से छिलने लगीं इर्द-गिर्द।

जफर—क्या खूब ! (*गुनगुना कर*) 'कली खिल रही है, नजर छिल रही है।'

गुलाब—(*गुनगुना कर*) 'फलक झूमता है, जमीं हिल रही है'।

जफर—अच्छा, जल्द लिये आना उसे''लगा तो तीर नहीं तो तुक्का—समझे। (*जफर का प्रस्थान, दूसरी ओर से मीरा का प्रवेश*)

मीरा—ऐ लो, पिता जी कहाँ रहे ?

गुलाब—तुम्हीं को ढूढ़ने गये हैं। मैं तो पलकें बिछाये बैठा हूँ—तुम जाने कहाँ''लो वह आही गये।

(*सुरेश का प्रवेश*)

सुरेश—अच्छा, यही आ रही हो तुम दो पल में—तुम्हारी माँ कहाँ रह गईं ?

मीरा—रनबीर भैया साथ हैं न—आती हो होंगी।

सुरेश—लो बस जैसी है वह ! रनबीर आया नहीं कि अपने में रह ही नहीं पाती'''तो, लो गुलाब लिये जाओ उसे अपनी माँ के पास !

मीरा—अभी, इस घड़ी ? माँ ने तो कहा है कि कहीं बाहर न जाना—शहर में जानें क्या ऐसी हलचल सी''''

सुरेश—भला मीरा, किसी गैर के घर जा रही हो तुम—वह भी तो एक माँ ही ठहरी तुम्हारी।

मीरा—आप को चाय तो देती जाऊँ...अभी सेब तराश कर लाई...(*वह अन्दर की ओर मुड़ने लगती है*)

सुरेश—कोई बात नहीं—सोहन है न...उसी से कह दो—हाँजी अपना यह दुपट्टा तो बदल दो।

(*मीरा अन्दर जाती है*)

गुलाब—(*बड़ी नम्रता से सुरेश के नजदीक आकर*) माँ ने आप से अपनी तकलीफ.....

सुरेश—वह दर्द अभी गया नहीं? उठ-बैठ तो पाती होगी अब?

गुलाब—कहाँ! महीनों तो हो रहे...दवा-दारू में एक खासी रकम......

सुरेश—अच्छा लिये जाओ यह...एकाध दिन में कुछ और...

(*दस-दस के दो नोट गुलाब के हाथ में रख देता है*)

गुलाब—जी, जैसी मर्जी।

(*मीरा का प्रवेश*) (*गुलाब झुककर सुरेश को सलाम बजाता है और मीरा को साथ लिये बाहर जाता है*)

सुरेश—सोहन! सोहन!!

सोहन—(*नेपथ्य से*) जी आया।

सुरेश—माँ जी नहीं आई तो चाय भी नहीं आयेगी क्या?

सोहन—अभी लाया सरकार। (*वह चाय लिये आता है अन्दर से*)

सुरेश—ले उस टेबुल पर रख दे...जरा आदमी की तरह—हाँ

(*सोहन चाय रखकर वापस जाता है। सुरेश उठता है चाय बनाने*)

अबे चीनी नहीं, गुड़ दिये जा—गुड़। भूल गया—सफेद चीनी तो अपने चाहने वालों पर ही हाथ साफ करती है।

(*रनबीर और रनवीर की माँ का प्रवेश*)

बेला—ऐ लो, तुमने अभी चाय नहीं पी—मीरा, ओ मीरा! भूना चना लिये आना मेरे डब्बे से...कहा उड़ गई फिर?

सुरेश—आई भी और गई भी। तुम्हीं आते-आते जाने कहा रह गई।

बेला—गई कहां—किसके साथ ? आज कहीं बाहर जाने जोग है—शहर का रवैया ही कुछ अजीब हो रहा है, बाजार में तो जैसे उल्लू बोल रहे हैं—उल्लू। सारी दुकानें बन्द।

सुरेश—कोई बात नहीं। गुलाब की माँ ने उसे बुला भेजा है—समझी।

बेला—गुलाब साथ ले गया है न!—तुम्हें पता है, उसकी माँ भी उससे खिंची रहती है इधर। मगर, करे क्या बिचारी—किसी से कैसे क्या कहे। आखिर तो माँ का कलेजा—दुनियाँ एक ओर, बेटा एक ओर। हाँ, वह चाह रही है कि कहीं दूर—दूसरी जगह पढ़ने के लिए तुम उसे भेज पाते। यहाँ तो आवारों का साथ है आठो पहर।

सुरेश—किसी ने तुम्हारे कान भरे हैं क्या···पिता जी ने तो नहीं ?

बेला—लो सुनो, जैसे मैं अपनी ओर से गढ़ लाई हूँ। उसकी माँ ने तो मीरा से ही डरते-डरते कहा था···उस बार जो गयी थी वहाँ, मगर तुम्हारे सामने मीरा से कहते न बनो— डरती रही·····

रनवीर—इमतिहान में भी वह कहाँ बैठा, बातें बना कर रह गया।

सुरेश—क्या सच ? तुमसे कोई बात हुई थी क्या ?

रनबीर—कोई बात की बात तो होने से रही—दिन की पूछिये तो रात की कहे वह। उसके अन्दर का ताल सुर तो उसका मौला ही जाने।···आप सुलतान भाई से न पूछ लें—दूर रहते हैं तो क्या, प्रेस में तो मिलते ही होंगे अक्सर। वही उस दिन कहते रहे कि गुलाब ने तो अब नई लीडरी की तरफ छलाँग लगाई है—जब देखिये, बस यही लगी रहती है आठो पहर, कालेज की पढ़ाई क्या खाक होगी ?

सुरेश—लीडरी—कैसी लीडरी ?

रनबीर—लीग की लीडरी। यही नया दौर है न आज—गांधी-वाद का जवाब जैसे।

सुरेश—हैं! यह क्या सुन रहे हैं हम—ऐसा?

रनवीर—जी, आप अभी कहेंगे कि यह क्या देख रहे हैं हम, ऐसा? भाई उठा है भाई का गला घोटने···लीजिये, सुनिये, अल्लाहो अकबर के नारे···घबराओ नहीं माँ, जाही रहा हूँ गुलाब के घर—लिये आता हूँ मीरा को दो पल में। (*रनवीर जाता है*)

बेला—(*घबराई हुई*) हाय राम! क्या जानें, क्या देखना है आज? ऐसी भी घड़ी टेढ़ी होती है किसी की? जो बे-मेघ की बिजली टूट कर मेरे सिर आई थी, कहीं मेरी मीरा पर भी वो···

सुरेश—दुत्! कोई बात नहीं। रस्सी में साँप देख रही हो—साँप। भला गुलाब की जात से ऐसी बात! ऐसा भी खून सफेद हो गया है कि··

बेला—क्या जाने, युसुफ ने उस पर अपना रंग चढ़ा दिया हो तो ··

(*सुरेश के पिता बदहवास आते हैं और पास की चौकी पर सर थाम धम से बैठ जाते हैं*)

प्रेम०—ओह, जान बची! क्या दिन आ गये आज! जरा ठंढा पानी लाना—पानी

सुरेश—आखिर बात क्या है पिताजी··लीजिये, यह पानी है।

(*सुरेश के पिता सुरेश के हाथ से जल लेकर पीते हैं*)

प्रेम०—क्या बताऊँ, करीब था कि घर पहुँच जाता··मगर एकाएक गली के नुक्कड़ पर वह रेला उमड़ आया—रेला कि लो आगे बढ़ना खतरे से खाली न था—वही मुहल्ले वाले मियाँ मुल्लों का दल··बेतरह बौखलाये। उसी भीड़ में जफर जो नजर आया तो माथा ठनका। याद है न वह—वही जफर। जैसा छँटा ठहरा, ललकार ही तो बैठा खड़े-खड़े··इतने में देखता क्या हूँ कि तुम्हारे करीम भाई का बटा··हाँ-हाँ, वही सुलतान सामने की गली से दौड़ा आ रहा है। भगवान भला करे उसका, लपक कर खींच ही तो लिया अपनी ओर। बस जान

में जान आई—लौट आया सुलतान के साथ। पहुँचा गया मुझे इस मोड़ तक।··हाँ जा, रनबीर को देख नहीं रहा हूँ। कहाँ है वह—गया कहाँ?

सुरेश—आता ही होगा पिताजी! कोई बात नहीं।

प्रेम०—(*बदहवास उठ कर बाहर जाना चाहते हैं*) गया कहाँ वह—कहीं तूफान में घिरा तो नहीं?··तुम्हें साँप सूंघ गया है क्या? बोलो, कहाँ रहा वह मेरे बुढ़ापे का सहारा!

सुरेश—(*नजदीक जाकर हाथ थामते हुए*) भला ऐसा क्यों हो रहे हैं आप—यह भी कोई बात है?

प्रेम०—(*उठकर*) नहीं-नहीं, जैसे हो ढूँढ़ ही लाऊँ उसे। बुढ़ापे ने पैरों में बेड़ियाँ डाल दी हैं तो क्या—रगों में बिजलियाँ जो कौंध पड़ीं। (*नेपथ्य की ओर बढ़ते हैं*)

बेला—(*लपक कर ससुर के कदमों पर गिर जाती है*) पिताजी! मीरा··मीरा बिचारी तो···

प्रेम०—उठो-उठो, बहू··क्या सुरेश, यह क्या? बहू क्यों टूट गई ऐसी?

सुरेश—(*नेपथ्य की ओर देखकर*) लीजिए, आ गया वह।

(*रनबीर तेज़ी से अन्दर आता है—बेला बदहवास दौड़ कर बेटे का हाथ पकड़ लेती है*)

बेला—मीरा···? मीरा कहाँ है—साथ नहीं लाये तुम?

रनबीर—कहाँ कहूँ? गुलाब भी नहीं घर पर। कल शाम ही से जानें कहाँ रम रहा है। पता चला कि उसकी माँ अलग तड़प रही है, इस हंगामें में कहाँ किस चक्कर में है वह।··भला मीरा को कब बुलाने गई वह—गुलाब ने सरासर झूठ कहा—झूठ।

बेला—(*सुरेश की ओर मुड़कर*) लो सुनो, दूध पिला-पिला कर साँप को पाला—आस्तीन का साँप। तुम्हीं को डँसने उठा आज। युसुफ से भी बीस ही आया—उन्नीस नहीं। (*बेला परीशान वहीं बैठ जाती है माथा थाम*) हाय राम! यह क्या हो गया? अब क्या होगा—बाला।

सुरेश—लो, मुझे क्या मालूम कि युसुफ ने कुछ और ही पढ़ा दिया है उसे। वह अन्दर कुछ है, बाहर कुछ। क्या सोचा, क्या चाहा, क्या देख रहे हैं आज यह!

रनबीर—अब जो सामने है उसे देखिये पिताजी! गुज़रे हुए कल को न देखकर आने वाले कल को देखिये।

सुरेश—हाँ जी रनबीर, सुलतान से भेंट हुई है तुम्हें?

रनबीर—जी, अभी-अभी मिला इसी मोड़ पर। पता चला कि दादा जी गिरते-पड़ते लौट आये।

प्रेम०—उसे साथ लिये क्यों न आये तुम! वही तो बच रहा है अपना एक सहारा।

रन०—आ ही रहा है वह, गया है ज़रा खोज-खबर लेने। मैं भी चला—मीरा के उबार के लिए तो जान हथेली पर रखनी ही है आज।

प्रेम०—मगर अकेला चना कहाँ तक भाँड़ फोड़ पायेगा—क्या कर पाओगे तुम?

रन०—भला दादा जी, मान के आगे जान का क्या मोल? अब तो जो बला आये, आये—मेरी बला से।...हाँ सुलतान भाई तो साथ हैं—कुछ उठा न रखेंगे।

बेला—मगर है वह ऐसा अपना?

रन०—है नहीं? मेरी बहन उसकी भी बहन ठहरी, मेरी इज्जत—उसकी इज्जत। (*नेपथ्य की ओर देख कर*) लो, यह आ गये सुलतान भाई।

सुलतान—बस, देर नहीं—उठो, बढ़े चलो। वह युसुफ भी आ गया है अड्डे पर—आग में घी देने। जो कुछ भी न हो, थोड़ा है।

सुरेश—अच्छा! वह भी है यहाँ! तो फिर क्या? आज हमीं या वही। (*तैश में बाहर निकल जाता है।*)

बेला—(*दौड़ कर सुलतान का हाथ थाम लेती है*) मीरा!...... मेरी मीरा कहाँ रही सुलतान!

सुलतान—घबराइये नहीं माँ जी! मीरा पर कोई आँच न आने पायेगी। गुलाब की शामत आई है—शामत। यह

देखिये, क्या ले रखा है हाथ में...(*हाथ का पिस्तौल दिखाता है*)

प्रेम०—(*चौंक कर*) किसी की जान लोगे क्या ?

सुलतान—नहीं-नहीं, भूल कर भी नहीं।

प्रेम०—तो फिर ?

सुलतान—बस जान रखिये, बृटिश शेर को पंजे में लाने के लिए सत्याग्रह का अस्त्र बेजोड़ जो रहा हो, मगर अपने यहाँ तो एक पिस्तौल का डर...डर है। आपकी साबरमती फैक्टरी में ढले हुए हथियार वो अपने घर वैसे कारगर होने से रहे।

रनबीर—वो दादा जी, आप तो यहीं रहेंगे न ?

प्रेम०—मेरे गये क्या होने को है भला। रगों में लहू लाख उबाल ले—जवानी गई, ज़िन्दगी गई।

रनबीर—अच्छा वो माँ पर एक नज़र रखेंगे आप।

सुलतान—यहाँ कोई डर नहीं, इतमिनान रखो—पुलिस की चौकी जो सामने ही रही।...अच्छा जी, खुदा हाफ़िज।(*सुलतान और रनबीर जाने को मुड़ते हैं*)

प्रेम०—नहीं-नहीं, जी नहीं मानता—चलो, हम भी चलें। (*तीनों बाहर निकल जाते हैं*)

बेला—हाय भगवन ! अब तुम्हीं रहे, 'एक भरोसो, एक बल'। मेरी उस दिन न सुनो, न सुनी—मीरा की तो सुन लो नाथ ! (*बेला आसमान की ओर हाथ जोड़ खड़ी रहती है—आँखों से आँसू बह रहे हैं।*)

तृतीय अंक

द्वितीय दृश्य

[आधी रात का सन्नाटा। दंगे के बाद का सीन। जली मशालें, चीथड़े, कंकड़, ढेले चारों ओर बिखरे पड़े हैं—नेपथ्य में रह-रह कर किसी के कराहने की आवाज—कोई पानी मांग रहा है—पुकार रहा है किसी को, कितनी अजीब आवाजें दूर से रह-रह कर आती हैं—

सामने एक छोटे से मकान का दरवाजा—एक आदमी हाथ में डंडा लिये मकान के सामने आता है, फिर नेपथ्य में वापस चला जाता है—लगता है, जैसे पहरा दे रहा है।

रनबीर और सुलतान पैर टीप कर आते हैं—पीछे उनके सुरेशजी और प्रेमनाथजी हैं—सबों के हाथ में डंडे हैं। प्रेमनाथ जी सबसे पीछे झुक-झुक कर चलते हैं।]

सुलतान—(फुस-फुसाता है) लो, यही वह घर है—युसुफ का अड्डा। इसी घर में कहीं होगी वह।

रनबीर—(फुस-फुसा कर) क्या सच ? और गुलाब ?

सुलतान—(धीमी आवाज़ में) उसकी तो बात ही न पूछो, युसुफ ने उसे कुछ का कुछ बना दिया। आज नकाब उतार फेंका है उसने—यकीन मानो।

सुरेश—(धीमी आवाज़ में) मगर दंगे में लूट मार का दौर जो रहा हो, किसी औरत पर तो कहीं कोई आँच न आई—एक बिचारी मीरा पर ही यह जुल्म क्यों ?···

सुलतान—यह सब युसुफ की चाल ठहरी—किसी ऐसे-वैसे का काम नहीं। उसीने आकर यह सबक दी होगी कि लो इसी हीले उसे उड़ा लो। है भी वह इस फन का नम्बरी ओस्ताद—'उम्र सारी इसी भट्ठी प गुजारी साकी' और गुलाब भी आखिर बाप का बेटा ही ठहरा····

प्रेम०—अजी बेटा क्या····बाप का भी चचा निकला वह—है न ?

सुलतान—जी, और क्या ? और दिल फेंक भी वैसा ही बेजोड़। जफ़र से तो पता चला कि यह लड़की जानें कब से उसकी नज़र पर रह आई है—आज का यह दंगा तो बिल्ली की किस्मत से छींका ही टूटा जैसे···

रनबीर—तो यह दंगा खड़ा करने में उनका कोई हाथ नहीं···

सुलतान—अजी, नचा तो रहा है अपनी उँगली पर कोई और —मगर वह कोई ऐसा-वैसा नहीं, एक ही हुशियार। हमारे तुम्हारे सामने तो आने से रहा—तुम्हें दिखे कैसे ?···बस दिखते हैं ये नाचते हुए कठपुतले जिन्हें मज़हब की अफ़ीम खिलाकर भाई-भाई का गला घोंटने को मैदान में उतार देना उसके बायें हाथ का खेल ठहरा। हाँ, इस दंगे को लेकर कोई कुछ पा गया, कोई कुछ खो बैठा··किसी का घर जले, कोई तापे और लीजिए देश की आज़ादी चूल्हे-भाँड़ में गई।··लो, वह आ गया···

[सभी एक तरफ नेपथ्य में सरक जाते हैं। दूसरी ओर से डंडे वाला पहरेदार आता है और जम्हाई लेता हुआ लौट जाता है

मकान के अन्दर से मीरा की चीख की आवाज़—

मीरा—छोड़ो-छोड़ो, दूर हो···देखते नहीं—हाथ में यह क्या है ?

(गुलाब की आवाज़)

गुलाब—अरे यह छुरी तुम्हारे हाथ में कहाँ से आई ?

(मीरा की आवाज़)

मीरा—कहाँ से आई। राम की मर्ज़ी। सेब तराशने बैठीं, रह गई जेब में···बस, हाथ बढ़ाया नहीं कि कलेजे में भोंक लूँगी····जो हो···]

रनबीर—लो बस यही मौक़ा है, देर नहीं···घुस पड़ो।

प्रेम०—ठहरो रनबीर····अन्दर घुस पड़ना खेल नहीं··जान पर आ गई तो।

(रनबीर का कंधा थाम लेते हैं)

रनबीर—(*आवेश में*) आये, कोई परवाह नहीं। आखिर जान पहले या मान ? मेरे कुल पर, धर्म पर, सर्वस्व पर जा रही है गाज गिरने और मैं जान का भूखा आँख मूँद बैठा रहूँ··· ऐसा गया-गुज़रा आपका रनबीर नहीं। आखिर इस जीवन में जो कुछ मैंने आपके चरनों के तले पाया उसकी आज ही परीक्षा ठहरी··· युनिवर्सिटी की ऊँची डिग्री कोई कसौटी नहीं। सत्य के लिए, कर्त्तव्य के लिए इस जीवन की तिलांजलि ही वह ऊँची चोटी ठहरी··· और सुल्तान भाई जो साथ हैं, इस घर के कोने-कोने को जान रहे हैं—कोई अंदेशा नहीं।

(पहरेदार फिर सामने आता है, जम्हाई लेता हुआ जा रहा है, थका-मादा। हठात् पीछे से आकर रनबीर उसे पछाड़ देता है, और मुँह में कपड़ा ठूस उसे घसीटता हुआ नेपथ्य में चला जाता है—सुल्तान भी साथ-साथ मदद देता है—सुरेश भी हाथ बटाता है खैंच कर अलग करने में)

[रनबीर और सुल्तान अन्दर घुस जाते हैं—धर-पकड़··· चीख़··· गोली की आवाज़··· अन्दर से दो-चार दौड़ सामने आते हैं··· उनमें गुलाब भी है। सुरेश बढ़ कर गुलाब का हाथ थाम लेता है—गुलाब चौंक कर आँखें फाड़ सुरेश को देखता है]

सुरेश—तुम ! तुम भी गुलाब ! यही तुम हो हमारे··· आसमान फट पड़ेगा—आसमान···

गुलाब—अच्छा, आप हैं ! लीजिए, मैंने आप का नमक अदा कर दिया··· अपनी मीरा को जल्लादों के पंजे में जाने न दिया।

सुरेश—लो, जैसे कि जाने को बाक़ी है वह।

गुलाब—सच मानिये, ज्योंही उसे लेकर मैं अपने घर की ओर मुड़ा, देखता क्या हूँ, एक हँगामा खड़ा है सामने—चंद जाने-पहचाने लीगी लीडर भी नज़र आये··· और भी कुछ ऐसे-वैसे··· एकाध तो झपट्टा मार उसे अपनी ओर खैंच लेने को टूट पड़े लेकिन वाह रे अपना Presence of mind··· मैंने डपट कर कहा कि

खबरदार—हाथ न बढ़ाना, यह कोई ऐसी-वैसी नहीं, अपनी बीबी ठहरी—बीबी…

सुरेश—(*गुस्से में*) बीबी—बीबी कैसी ?

गुलाब—भला उस मौके पर बचाव का दूसरा जरिया क्या था—कहीं कुछ हो जाता तो आप भी मुझी पर उँगली धरते। उनसे तो पर्दा नहीं कि मेरी अपनी कोई बहन नहीं…अपनी बीबी ही कहने में बेचारी की जान की पनाह देखी…मगर लीजिए जफ़र खड़े-खड़े तुल गया कि ऐसे नहीं, अभी निकाह कर इतमिनान दो, नहीं तो वह तुम्हारी कैसी ? जब हाथ आई है तो फिर हमारा भी हिस्सा चाहिये…

प्रेम०—लो सुनो, तुम्हारे गुलाब ने कैसे-कैसे मोर्चे लिये…भई खूब ! बेटा हो तो ऐसा हो !…

गु०— जी, मैंने देखा कि चलो, किसी हीले जान तो बचे, और शादी ही रही तो मुजायक़ा क्या ? आपकी कोर तो दबती नहीं, यह इतमिनान जो था कि आप ठहरे एक ऊँचे Theosophist—खुला दिल और खुली नज़र—उठे हैं समाज को नये साँचे में ढालने…घर-घर राम और रहीम को एक ही धागे में पिरोने…

प्रेम०—खूब ! मियाँ की जूती मियाँ के सर !

गु०— वैसे तो भूल किससे नहीं होती…हुई ही हो तो, हुई होगी लेकिन जहाँ तक मैंने आपको समझा है, मेरी कोई भूल नहीं। क़सूर की तो बात ही और है।

सुरेश—(*गुस्से में चूर…दाँत पीसते हुए*) हरामज़ादे ! होश की बातें कर…होश की। बड़ा आया है…

[सुरेश अपने आप में नहीं, एक तमाचा गुलाब के मुँह पर मारता है, गुलाब तिलमिला उठता है, सम्हल कर सीटी फूँकता है—सीटी।

सुरेश लपक कर उसके हाथ से सीटी छीन लेता है…आपस की हाथापाई। उसी पल रोती-तड़पती मीरा को लिये रनबीर आता है, सुलतान भी साथ है… रनबीर के सर से लहू टपक रहा है, कपड़े पर खून है…कपड़ा फटा भी है—सुलतान भी बदहवास है—उसका कोट भी फटा है एकाध जगह—हाथ में पिस्तोल है…]

सुल०—लीजिए—मीरा आ गई—सही सलामत। आज हाथ में पिस्तौल न होता तो रह जाते हाथ मल कर।

(सुलतान पर नज़र पड़ते ही गुलाब सामने आता है पर हाथ में तने हुए पिस्तौल को देख कर ठमक पड़ता है।)

गु०— हाँ जी सुलतान! भले मुसलमान हो तुम··लानत है—लानत। तुम्हारी रगो में किसी काफिर का लहू तो नहीं···

सुल०—जी शुक्र है—तुम्हारी तरह किसी शैतान का लहू नहीं।

(गुलाब तड़प उठता है)

गु०— क्या कहा? शैतान का! फिर तो··

सु०—यह क्या है आखिर? बरसों जिसका नमक खाया, जिसने तुम्हें आदमी बनाने के लिए अपनी तरफ से कुछ उठा न रखा, यही उठे हो उसकी क़ीमत चुकाने? उसकी आँखों की पुतली के साथ··

गु०— यह लो, जभी तो कितनी महँगी कीमत चुकानी पड़ रही है मुझे! कहाँ उसे यों ही रख लेता, एकाध महीने की तफरीह, बस—कहाँ जा रहा हूँ उसे अपनी हँसी-खुशी·· अपनी जिन्दगी तक सौंप देने····दे रहा हूँ अपनी बीबी का रुतबा···

सु०— अच्छा! ऐसी शराफत! क्या बात कही है तुमने! यह अपनी बीबी की भी एक ही रही। उसकी मर्जी—उसके वालिद की मर्ज़ी नहीं—और तुम उठे हो···

गु०— अमाँ! न सही उनकी, मेरे वालिद की मर्ज़ी तो ठहरी। अब चाहिए क्या?

सु०— वाह! अच्छे रहे! बाप से तुम और पाते ही क्या?··· लाखों पाये। बस, लिये रहो यह मर्ज़ी··मिल चुकी तुम्हें मीरा और पा चुके तुम अपनी मुराद—*(प्रेमनाथजी की ओर मुड़ कर)* बस आइये, यही दो क़दम पर अपना ही घर है, वहीं रखे आता हूँ दो पल में··

(मीरा को साथ लिये नेपथ्य की ओर मुड़ता है—प्रेमनाथ जी भी साथ हैं)

[तभी युसुफ दौड़ा आता है अन्दर से—चाहता है लपक कर मीरा को खींच लेना। सुरेश उसी पल युसुफ के सर पर कस कर एक डंडा मारता है। युसुफ चिल्लाता तिलमिलाता हुआ नेपथ्य में जाकर गिरता है। गुलाब सुरेश पर झपटता है डंडा लिये। रनवीर दौड़कर सुरेश के आगे खड़ा होकर वार अपने ऊपर ले लेता है। उधर गुलाब बदहवास नेपथ्य में भागता है। इधर रनबीर सख्त चोट खाकर जमीन पर लोट जाता है। सुरेश उसे गोद में उठाता है—गले लगा कर फूट पड़ता है।]

सुरेश—*(रोते हुए)* आह बेटा. मैंने तुम्हारे साथ···*(सुरेश रनबीर को गोद में समेट लगता है रोने।)*

[प्रेमनाथ जी का प्रवेश]

प्रेम०—अरे यह क्या···यह क्या बला आयी! रनवीर! रनबीर!! *(प्रेमनाथ जी बदहवास झुक कर रनबीर को पुकारते हैं—उठाना चाहते हैं, रनवीर बेहोश पड़ा है—लहू से लथपथ।)*

सुरेश—क्या कहूँ पिताजी, मेरे पाप का प्रायश्चित्त।

प्रेम०—अब जाकर तुम्हारी आँखें खुलीं! बेटा कौन अपना है कौन पराया—देख लिया तुमने? लहू-लहू की रट लगाते रहे—क्या माया है यह लहू का रिश्ता? पगले, दिल का रिश्ता रिश्ता है, लहू का रिश्ता तो एक चक्रमा, बस··मैं पूछता हूँ आज रनवीर न होता तो? रहता तुम्हारे सर पर यह आसमान? टिकती पाँव तले यह जमीन? कहा के रहते तुम, कहा की होती मीरा? *(रनवीर की ओर देखकर)*··मेरे लाल! तुमने तो जिन्दगी की बाजी लगाकर धन्य बना दिया अपना जीवन, दुनियाँ की आखों में उँगलिया डाल दिखा दिया —क्या होता है फर्ज, क्या है मानवता का स्पन्दन, किसे कहते हैं अपनापन! तुमने तो सब कुछ पाया, पर लो, हमने तो सब कुछ खोया आज! नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता, तुम्हें ऐसी कीमत नहीं चुकाने दूँगा। हमें तुम्हारी जिन्दगी चाहिए, अपने ही लिए नहीं, देश के लिए भी। ··ऐ दुनिया के मालिक, यह क्या है साफ····अंजाम है तुम्हारा? अपने चमन के इस फूल को क्या इसीलिए

पैदा किया कि खिलने के पहले ही उसे मसल दिया जाये ?/नहीं, नहीं, तुम्हारी दुनियाँ तो टिकी है इन्हीं बहादुर आत्माओं पर !··तो, बख़्श दो मेरे रनवीर को—अपनी इस अनमोल देन को, उसकी प्यारी जान ! बाबर ने अपने प्यारे बेटे हुमायूँ की जान की भीख माँगी थी, अपनी जान देकर। तुमने सुन ली उसकी और दे दी बेटे की जान की भीख ! आज मैं अपनी जान हथेली पर रखकर भीख माँगता हूँ अपने रनवीर की जान की। भगवन्, आज मेरी पुकार भी तुम्हें सुननी ही पड़ेगी। और यह मेरी ही फरियाद नहीं. सारी मानवता की भी माँग ठहरी। लो सुनो, आज मानवता पुकार रही है, हमें रनवीर को दो ! हमें रनवीर को दो !!

(इस प्रकार चिल्लाते हुए प्रेमनाथजी मूर्च्छित हो जाते हैं। उनका सिर रनवीर के सिर पर गिर पड़ता है। सुरेश लपक कर संभालना चाहता है। परदा गिरता है।)